सिंधी-भाषाका संक्षिप्त परिचय

" The Sindhi is a pure Sanskritical language, more free from foreign elements than any other of the North Indian vernaculars. It is much more closely related to the old prakrit than the Marathi, Hindi, Panjabi and Bengali of our days and it has preserved an exuberance of grammatical forms for which all its sisters may well envy it. "

Grammar of Sindhi Language,
By—Dr. TRUMPP. 1872

कृष्णचंद्र जैतली

सिन्धी-भाषाका संक्षिप्त परिचय

[ऑल इण्डिया ओरिएन्टल कॉन्फरेन्स्, दिल्ली, के १९ वें अधिवेशन के सिन्धी-विभाग में श्रीयुत् जयरामदास दौलतराम (भूतपूर्व आसाम-गवर्नर) के कर-कमलों द्वारा अनावृत]

– लेखक –

श्री. कृष्णचंद्र टोपणलाल जैतली

काव्यतीर्थ, साहित्यशास्त्री, वैद्यविशारद,
आयुर्वेदरत्न, न्यायविशारद.

महाराष्ट्र ग्रंथोत्तेजक संस्था,
१११ सदाशिव पेठ, ...,
... ... बोळ, पुणे-४११ ०३०

द्वितीय संस्करण)

शके–१८९९

(**मूल्य - रु. १२**
(पोस्ट व्यय अलग)

-: प्रकाशक :-
श्री. कृष्णचंद्र जैतली

सरस्वती सोसायटी,
८१९/अ, भवानी पेठ, पुना ४११ ००२

सृ ज न- र क्ष ण

-: मुद्रक :-
श्री. तानाजी गणपत तुर्के
रामदास प्रिंटिंग प्रेस,
४०७।८, बुधवार पेठ, पुना २.

उपहार

श्री. महाराष्ट्र ग्रंथोत्तेजक संस्था पुणे यांच्या

पुस्तकालयासाठी

—सेवा में
कृष्ण जैतली

दि. ३।११।१९८५।

शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं

१—सिन्धी—साहित्य का संक्षिप्त परिचय।

अपभ्रंश - काल से लेकर आज तक
सिन्धी - साहित्यका हिन्दी में इतिहास।

२—सिन्धी - व्युत्पत्ति - कोष।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से
किसप्रकार शब्द बदल कर सिन्धी में आये हैं
यह बताया गया है।

३—सिन्धी लोक - गीत और लोक - गाथाएँ (हिन्दी में)।

४—शाह जो रसालो।

सिन्धु के प्रसिद्ध संत कवि
शाह भिटाई के काव्य का सचित्र
हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण।

—×—

शार्ङ्गधर-संहिता

(सिन्धी भाषा में)

टीकाकार:—

स्वर्गीय-वैद्यरत्न, रसायनशास्त्री श्री. टोपणलाल शिवराम जैतली.

आप इस सदी के सिन्धु में आयुर्वेद के पुनरुद्धारक थे। आयुर्वेदके अध्यापन, प्रचार आदिके साथ महान् परिश्रमसे आयुर्वेदके प्रसिद्धग्रन्थ 'शार्ङ्गधर संहिता' की सिन्धी-भाषा में 'सिन्धु–सुबोधिनी सिन्धी-टीका' नामसे सुन्दर टीका की है। इस टीका में विशेषता यह है कि रोग–परीक्षा, औषधि-निर्माण आदि का वर्षों का अनुभव बिना संकोच के लोक-कल्याण के लिए प्रगट किया है। जिससे नवीन वैद्योंको कहीं भी कठिनाई नहीं होगी। एक बार अवश्य खरीदकर पढ़िए। पुस्तक मिलने का स्थान:—

१–पं. वसन्तलाल टोपणलाल जैतली, काव्यतीर्थ, वैद्य-विशारद, ब्लाक-३८।रूम नं. १५१, १५२, वारसिया कॅम्प, बड़ादा.

२-पं. मोतीलाल टोपणलाल जैतली, वैद्य-विशारद, हुकूमतनगर, ग्राउंड फ्लोर, रूम नं. ६, तुलसी पाईप रोड, दादर, मुम्बई २८.

३-कृष्णचन्द्र टोपणलाल जैतली, काव्यतीर्थ, वैद्य-विशारद, पदमजी कम्पाऊण्ड, भवानी पेठ, पूना २.

——

विषय-सूची

१–संकेतित ग्रंथ-सूची

२–समर्पण-पत्र

३--पढ़ने से पहले

४--प्राक्कथन

५--FOREWORD

६--प्रथम परिच्छेद:-- १--६७

सिन्धी भाषा का मूलस्रोत-पृ. १, पैशाची शब्दका रहस्य--१, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति तथा स्थान-३८, सिन्धी भाषा का वैदिक भाषा से सम्बन्ध-४४, सिन्धु के लड़ाई, आभीर और यादव एक ही थे-४८, व्राचड़ शब्द की उत्पत्ति-६३.

७--द्वितीय परिच्छेद:— ६८–८३

शब्दों में परिवर्तन और उसका तत्व-६८, संस्कृत और प्राकृत के उदाहरण - ७१, वैदिक भाषा के उदाहरण-७३, सिन्धी भाषा में शब्द परिवर्तन-७४.

८.-तृतीय परिच्छेद:— ८४–१६४

सिन्धी भाषा के भेद-८४, सिराइकी - सिन्धी - ८६, विचोली सिन्धी-९३, लाड़ी-सिन्धी-१०५, थड़ी सिन्धी-१२७, ढाटकी, सिन्धी-१३२, कच्छकी सिन्धी-१४६, लासी-सिन्धी-१५५.

९–चतुर्थ परिच्छेद:— १६५–२३१

सिन्धी भाषा की अरबी–सिन्धी लिपि-१६५, सिन्धी के कुछ अपने वर्ण-१६७, सिन्धी भाषा का सामान्य व्याकरण-१६८, संज्ञा-१६९, सर्वनाम-१८३, विशेषण-२००, क्रिया-२१२, क्रिया विशेषण २२२, सम्बन्ध-सूचक- २२४, समुच्चय-बोधक -२२४, विस्मयादि-बोधक-२२५, समास- २२५, प्रत्यय- २२९

१०–शुद्धि-पत्र २३२

संकेतित ग्रंथ-सूची

सं. सा. सं. इ.—संस्कृत-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास.
ले. पं. सीताराम जयराम जोशी, एम्. ए. साहित्यशास्त्राचार्य तथा पं. विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, एम्. ए. काव्यतीर्थ (प्रथम - संस्करण) लक्ष्मी बुक्डीपो, कलकत्ता.

सिं. बो. ता.-सिन्धी बोलीअजी तारीख, (सिन्धी-भाषा में)
ले. भेरूमल मेहरचन्द आदवाणी, कराची.

अ. को.- अमरकोष.

श्री म. भा. - श्रीमद्भागवत.

ऋ.-ऋग्वेद (सायण भाष्य), वैदिक संशोधन मंडल, पूना.

A. P. I. C.-Ancient Persia and Iranian Civilization By Clement Huart, London. 1927.

अशीरिया (मराठी-भाषा में), ले. रा. सीताराम रामचन्द्र गायकवाड़, राष्ट्र-कथा-माला, बडोदा.

वा. अलं.-वाग्भट अलंकार.

भा. भू.—भारतभूमि और उसके निवासी, ले. श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

पृ. रा.-संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा श्री नामवरसिंह.

लिं. स. इं.-लिंग्विस्टिक् सर्वे ऑफ इण्डिया, श्री ग्रियर्सन्.

G. E. S. U. M.—Geographical and Economic Studies in the Mahabharata Upayan Parva:- Dr. Motichandra, M.A.Ph.D., Lucknow, 1945.

प्रा. म.-प्राचीन महाराष्ट्र, श्रीधर व्यंकटेश, पूना.

J. R. A. S.—Journal of Royal Asiatic Society.

B. O. R. I.—Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute.

संकेतित ग्रंथ–सूची

N. I. D. E. L.—New International Dictionary of the English Language by :–Webster, London 1911.

T. A. I. Tribes in Ancient India, by :–Bimala Charan Law, Poona 1943.

चन्द्रगुप्त मौर्य–श्री हारिश्चन्द्र सेठी

ज्ञानेश्वरी :-श्री, राजवाडे

हिं. अ. यो:-हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग.

श्री नामवरसिंह, प्र.साहित्य भवन लि. इलाहाबाद.

को. स्मा. सं.:-कोषोत्सव स्मारक संग्रह, ना. प्र. सभा, काशी.

O. D. B. L. Origin and Development of the Bengali Language, shri S. K. chattarji.

Mesopotamia–by Delaporte, London, 1925.

G. G. D. Glory that was Gurjar Desa, by K. M. Munshi,

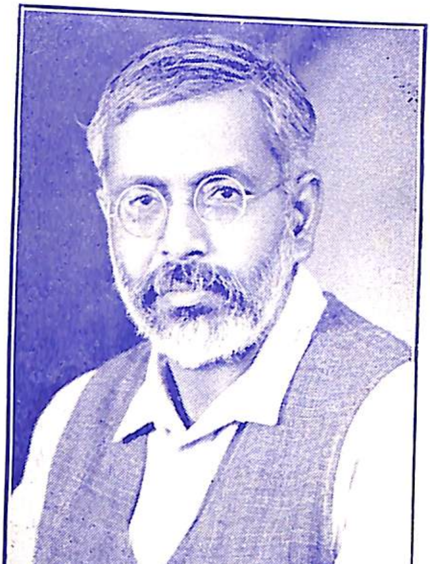
ना. प्र. प.:-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी.

R. A. W. The Religions of the Ancient World.

Śaka Studies, by – Sten Konow.

—×—

— सिन्धी साहित्य के महारथी —



स्वर्गीय

श्री जेठमल परशुराम गुलराजाणी

जिनकी, सिन्धी-साहित्य की

आदर्श - मय सेवाओं से

प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूपमें

प्रेरणा मिलती रही

उन

स्व. श्री जेठमल परशुराम गुलराजाणीजी के

कर – कमलों में

समर्पित

पढ़नेसे पहले—

१ सिन्धी - भाषा में जहाँ पदका अन्तिम स्वर संवृत हो जाता है वहाँ श्री ग्रियर्सन् ने (लिं. स. इं., भा. ८ में) उसको शब्द से ऊपर चढ़ाकर बताया है। जैसे-पी[उ], लठ[इ], आदि। परन्तु मैंने उस स्थान पर पूरा स्वर रखकर उसको हलन्त किया है। जैसे - पीउ, लठि आदि।

२. इस पुस्तक में जहाँ भी सिन्धी - गद्य - पद्यात्मक रचनाएँ आई हैं वे प्रायः लिं. स. इं. से ली गई हैं। वैशिष्ट्य इतना ही है, जहाँ ऊपर सिन्धी वाक्य आया है वहाँ ठीक उसके नीचे मैंने अपनी तरफसे हिन्दी शब्दानुवाद दिया है। यह भेद बताने के लिए ऊपर बड़ा टाईप और नीचे छोटा टाईप काम में लाया गया है। संभव है हिन्दी वाक्य रचना व्याकरण की दृष्टि से ठीक न बनी हो, परन्तु शब्दानुवाद होने से लाचारी है।

३. जहाँ ग, ज, ड, द, और ब के नीचे आड़ी लकीर दी है (ग, ज, ड, द और ब) वहाँ उसका अघोष उच्चारण होता है।

—*—

प्राक्कथन —

भारत-विभाजन से पहले ही मन में यह चाहना थी कि सिन्धी-भाषा और साहित्य का परिचय दिलाने के लिए हिन्दी में कुछ लिखूँ। इसी तयारी में था कि इतने में पाकिस्तान हुआ और आक्टोबर, १९४७ में अपनी जन्म-भूमि हैदराबाद (सिन्धु) छोड़कर आबू रोड (राजस्थान) में आया। भाग-दौड़ में जो कुछ पुस्तकें बचीं और जो कुछ मन में विचार थे उनके आधार पर 'सिन्धी-भाषा का संक्षिप्त परिचय' नामका निबन्ध लिखा और 'नागरी प्रचारिणी प्रत्रिका' (त्रैमासिक) काशी में प्रकाशनार्थ भेजा। वह निबन्ध संक्षिप्त होते भी कुछ बड़ा था। अतः श्री सम्पादक महोदयजीने इतना बड़ा निबन्ध पत्रिका में प्रकाशित करने की असमर्थता प्रकटकर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का सुझाव दिया। लेकिन पाकिस्तान से निकलने के बाद आर्थिक-संकट के कारण वह बात कुछ समय के लिए स्थगित रही।

आबू रोड (राजस्थान) में एक वर्ष रहना हुआ। फिर वहाँसे रवाना होकर १९४९, ई० के आरंभ में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर पूना में आया और वहाँ स्थायी रूप से रहने का विचार किया। पौरोहित्य, अध्यापन और गृहस्थी के कार्यों से निपटने के बाद जो कुछ अवकाश मिलता था उस में 'डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना,' 'भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीटयूट, पुना,' 'भारत इतिहास संशोधन मण्डल, पूना,' और 'वैदिक-संशोधनमण्डल, पूना' आदि संस्थाओं के पुस्तकालयों में जाकर प्राचीन इतिहास तथा

भाषाओं का अभ्यास करता रहा। सिन्धी-भाषा के सम्बन्ध में कई नवीन बातें मालूम हुई और पहले से कई गुना अधिक सामग्री मिली, जिस को सुचारु रूप से संगृहीत कर पुस्तक का आकार दिया। यद्यपि इस पुस्तक में कई स्थानोंपर विशेष कर प्रथम परिच्छेद में विषयान्तर-सा मालूम होता है परन्तु 'स्थूणा-खनन' न्याय से उस विषय को स्पष्ट करने के लिए थोड़ा बढ़ा कर ही लिखा है। परु, मना, कीकट, मघवा (इन्द्र) का मग जातिका होना, चंद्रगुप्त मौर्यका आर्य–युनानी होना, सिन्धु के लाड़ाई, व्राचड शब्द की उत्पत्ति आदि कई ऐसी नवीन बातें इतिहासज्ञ तथा भाषा–विज्ञानियों के सामने रखी हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है।

एक और विशेष बात है कि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए संस्कृत-भाषा को प्रधान स्थान प्राप्त है। वह एक मान–दण्ड है जिस से अन्य भाषाओं की नाप–तोल की जाती है। फिर चाहे वह संस्कृत से पूर्व की हो या बाद की। अतः इस पुस्तकमें भी सिन्धी–भाषा के शब्दों में परिवर्तन आदिका विचार संस्कृत–भाषा को मुख्य मान कर किया गया है।

इस पुस्तक का चतुर्थ–परिच्छेद (सिन्धी-भाषा का सामान्य व्याकरण) चिरायु मुरलीधरने लिखकर तैयार किया है। यद्यपि अध्ययन और अध्यापन से उसको अवकाश कम मिलता रहा फिर भी अपना प्रिय विषय होने से वह लिखने का लोभ संवरण न कर सका,

सिन्धी भाषाका संक्षिप्त परिचय

[ऑल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फरेन्स्, दिल्ली, के १९ वें अधिवेशन के सिन्धी-विभाग में श्रीयुत् जयरामदास दौलतराम (भूतपूर्व आसाम-गवर्नर) के कर-कमलों द्वारा प्रकाशित।]

लेखक :– श्री कृष्णचंद्र टोपणलाल जैतली
काव्यतीर्थ, आयुर्वेदरत्न आदि

प्रस्तावना :– डॉ. श्री. एस्. एम्. कात्रे, एम्. ए.
डायरेक्टर-कोष-विभाग
डेक्कन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

मूल्य–रु. ४] [१९५७, ई.

– प्राप्तिस्थान –
मुरलीधर जैतली, बी. ए.
पदमजी कम्पाऊंड, भवानी पेठ, पूना २.

1-5, सरस्वती सोसायटी
८११-अ, भवानी पेठ, पुणे

Extract From Foreword of this Book

Dr. S. M. KATRE, Director, Deccan College Research Institute, poona 6.

I have great pleasure in acceeding to the request of Sri K. T. Jetley to introduce his little book on Sindhi language. Sindhi is one of the most interesting of languages belonging to the Indo-Aryan group, having, as a general rule, preserved the vowel quantities in initial syllables, in opposition to the general tendencies' in other Indo-Aryan languages to reduce this equantity in heavy syllables.

रामदास प्रेस, पुणें २.

सिन्धी-भाषाका संक्षिप्त परिचय

पुस्तकके संबन्धमें कुछ चुने हुए अभिप्राय

Dr. A. S. Altekar,

President, All-India Oriental Conf. Delhi, and Director, K. P. Jayaswal Research Institute, Patana.

"Sindhi-Bhasha-ka Samkshipta Parichaya" is an interesting and informative work on a subject little known to the people and scholars in India. ... ...

I feel that the book will serve a useful purpose in elucidating the subject and bringing out the close relationship between Sindhi language on one side and the Sanskrit and Sanskrit derived languages of India on the other. There are a number of borderland languages in India which are believed to be un-Sanskritic, but critical study has shown that even a language like the Khowar in Chitral has a large element of Indo-Aryan element in it. A proper study and language of these border dialects is necessary to understand the influence of the Indian culture.

Patna, (Sd.) A. S. Altekar
7-6-58.

Shri Jayaramdas Daulatram

Ex-Governor of Assam, and President of Sindhi Section of All India Oriental Conf. Delhi.

Pandit Krishnachandra T. Jetley has done service to the cause of the Sindhi language by writing this book in Hindi describing the origin and structure of this important language of the country. Though spoken by about 5 million people

(in India and Pakistan) it has its place in the history of the evolution of the Indo-Aryan languages in its various offshoots which to day are the media of speech and literature in Northern and Central India.

Pandit Jetley has given to the readers of Hindi a useful and handy account of the language and its links with some other languages of the country. He has referred to a wide range of books to secure facts and data, he has utilized in his book. While there may be two opinions about his theory that the Sindhi language has originated from the Dardic tongue and not from the Indo-Aryan speech, his treatment of the subject should act as a stimulant to research scholars of Sindhi. Pt. Jetley's book will be found to be very helpful to Hindi knowing public in acquiring some idea of the Sindhi language and inducing them to make a fuller study of it and familiarize themselves with its literature.

New Delhi,
20-11-58. (Sd.) Jayaramdas Daulatram

Shri Suniti Kumar Chatterji.
Chairman legislative Council,
West Bengal, Calcutta.

Dear Sri Jetley,

Thanks very much for your kind gift of the "Sindhi Bhasha-ka Samkshipta Parichaya", in Hindi. This is a very timely work, and a very good work, to give an idea to the rest of India about the nature of the Sindhi language. You have given a considerable amount of thought to the whole problem.

... ...

The introduction to Sindhi Grammar in Hindi is the first of its kind, and this will be very useful to all students of modern Indo-Aryan languages. I only hope that your book will be very favourably received, as it fully deserves, and you will be able to be in a position to publish other books

particularly a brief history of Sindhi literature and the Sindhi folk-songs with Hindi translation as well as the Hindi version of that great classic of Sindhi " Shah-jo-Risalo ".

Calcutta, (Sd.) Suniti Kumar Chatterji
21-2-58.

श्री. वासुदेवशरण अग्रवाल

प्राध्यापक, काशी विश्व-विद्यालय, काशी

प्रिय श्री जैतलीजी,

आपकी पुस्तक " सिन्धी-भाषाका संक्षिप्त परिचय " देखकर चित्त प्रसन्न हुआ ।

सिन्धी-भाषाका माधुर्य अपनी ओर खींचता है । आपकी पुस्तकसे मैं इस भाषाके अधिक निकट आ गया । सन् १९२७-२८ में साधु वास्वानी के मुखसे मैंने शाह लतीफका नाम सुना था । पीछे सचल और दलपत का नाम भी सुना । इन सब सिन्धी कवियोंकी चुनी हुई कविताओंका एक संग्रह २५०–३०० पृष्ठों में आप कृपया तैयार कीजिए । आप यह बड़ी सेवा करेंगे और सिन्धी भाषाको हिन्दीभाषी जनताके अति निकट ले आएँगे । शाह लतीफके समग्र काव्यका हिन्दी संस्करण आप तैयार कर दें ।

अपने इन अध्ययनोंके फल-स्वरूप सिन्धी-भाषाका एक कोष भी तैयार करते चलिए । देश-विभाजनसे सिन्धी-भाषाको बहुत क्षति पहुंची है । उससे उसका उद्धार होनाही चाहिए । सिन्धी-भाषा देवनागरी-लिपिको अपनाकर अपने साहित्य का प्रकाशन करें, उसका अनुशीलन करें, अध्ययन करें, नए साहित्यका

निर्माण करें, तभी सिन्धी-भाषा और साहित्य जीवित रहेगा और वृद्धिको प्राप्त होगा। इस कार्य के लिए एक संस्थाका संगठन करके केन्द्रीय शासनसे धन राशि लेनी होगी और कार्य में लगाना होगा। आप जो कर रहे हैं उससे मुझे आशा है कि यह आगेका कार्य भी सिद्ध होगा।

काशी, ५-१-५८.

(ह.) वासुदेवशरण

राजर्षि श्री. पुरुषोत्तमदास टंडनजी

'लोक-सभा-सदस्य'

"सिन्धी भाषाका संक्षिप्त परिचय" नामकी पुस्तक, जिस के लेखक श्रीकृष्णचन्द्र टोपणलाल जैतली हैं, खोज और गहरे अध्ययनका परिणाम है। सिन्धी भाषा के उत्थान पर हिन्दीमें ऐसी दूसरी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई।

पैशाची-प्राकृतको सिन्धी-भाषाका मूल स्रोत बताते हुए लेखकने पैशाची शब्द और पिशाच जातिका इतिहास थोड़े में दिया है और ऋग्वेदकी भाषाके साथ प्राकृतका संबन्ध जोड़ा है। सिन्धी भाषाके कई प्रकार के रूपोंके उदाहरण भी पुस्तक में दिये गये हैं।

मैं इस पुस्तक की रचनापर लेखक को बहुत बधाई देता हूँ

९३, अतरसुइया. इलाहाबाद

(ह.) पुरुषोत्तमदास टण्डन.

डॉ. श्री. रघुवीर

(राज्यसभा-सदस्य)

श्री. कृष्णचन्द्रजीका "सिन्धी भाषाका संक्षिप्त परिचय" देखा। पुस्तक बहुत सुन्दर है। इस ग्रन्थ से हिन्दी भाषियों को

सिन्धी भाषाकी रचना का बहुत सुन्दर ज्ञान हो जायेगा। प्रत्येक विद्यालय और पुस्तकालयको इस ग्रन्थकी प्रति लेनी चाहिये। इस पुस्तक में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी और मराठी के साथ सिन्धीका ज्ञान स्थान-स्थान पर दिखलाया गया है। सिन्धीकी उप-भाषाओंका भी इसमें सरल और सुन्दर वर्णन है।

श्री. कृष्णचन्द्रजीका सब प्रकारसे उत्साह बढ़ाना चाहिए, जिससे वह अपने दूसरे ग्रन्थों का भी प्रकाशन कर सकें।

दिल्ली, ३-१-५८ (ह.) रघुवीर

श्री. काकासाहेब कालेलकर, राज्य-सभा-सदस्य

आखिरकार सिन्धी-भाषाका परिचय हिन्दी में देनेवाला एक सिन्धीभक्त तैयार हुआ सही। श्री. कृष्णचन्द्र जैतलीने अभी-अभी एक ऐसी किताब हिन्दी जगतको दी है जिसके लिए वे धन्यवादके अधिकारी हैं। सिन्धी, हिन्दी, संस्कृत, मराठी आदि अनेक भाषाओंका ज्ञान संपन्न करके, पूनामें बैठकर इन्होंने यह किताब लिखी है। पौरोहित्यका और वैद्यकका अपना व्यवसाय संभालकर इन्होंने यह गवेषणापूर्ण किताब लिखी है, यह सराहने योग्य बात है।

इसमें वैदिक-काल से आजतक इस भाषा का कैसा विकास होता गया इसका थोडेमें रोचक जिक्र करके सिन्धी भाषाकी सिराइकी, विचोली, लाडी, थड़ी, ढाटकी, कच्छकी और लासी—ये सब सिन्धीके भेद विस्तारसे समझाये हैं और सिन्धी भाषाका सामान्य व्याकरण भी इस में दिया है।

भाषा-शास्त्र के अभ्यासी इस प्राथमिक ग्रन्थ का अभिनंदन करेंगेही। सामान्य सिन्धी लोगोंको तो यह किताब अवश्य रोचक और उपादेय होगी।

सिन्धी भाषा वैदिक परंपराकी, प्राकृत बहुल, संस्कृत परिवार-की अत्यन्त मधुर भाषा है। × × × ×

सिन्धी-भाषा और साहित्य हम भारतवासियों का एक कीमती धन है। भाषा-शास्त्रियोंके लिए सिन्धी का अध्ययन महत्व का है ही। लेकिन सांस्कृतिक दृष्टिसे भी इस भाषा के साहित्य का महत्व कम नहीं है। उत्कट प्रेम, विशुद्ध भक्ति और सूफी वेदान्ती तत्वज्ञान तीनों दृष्टिसे इस भाषाका खजाना अपना खास महत्व रखता है। × ×

जो सिन्धी लोग शरणार्थी होकर हमारे बीच आ बसे हैं. वे एक बहुत कीमती सांस्कृतिक पूंजी साथ ले आये हैं। और व्यापारी कौशल्य तो उनका है ही। ये लोग भारत के लिए भारभूत नहीं हैं। इनके सहयोगसे भारत काफी लाभ उठा सकता है। × × ×

श्री. जैतलीजी की यह हिन्दी किताब इस दिशामें स्वागतार्ह प्रयत्न है। हम आशा करते है कि जिस तरह अंग्रेज अफ़सर स्टॅकने नागरी अक्षरों में सिन्धीका कोश बनाकर दिया था, उसी तरह प्रस्तुत ग्रन्थकार सिन्धीका संपूर्ण व्युत्पत्ति-कोष हमें देंगे जैसा कि उन्होंने जाहिर किया है।

वेदान्ती संत कवि सामीके श्लोक नागरी अक्षरोंमें प्रगट होही रहे हैं। 'शाहजो रसालो,' सिन्धी लोक-गीत और गाथाएँ भी देवना-गरी अक्षरों में, हिन्दी अनुवादके साथ मिलेंगी, तब सिन्धी साहित्य

के भाषिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिए पूरा मसाला मिलेगा।

यह काम जितना जल्दी होसके उतना अच्छा।

मंगल प्रभात, दिल्ली
१४-१-५८

श्री. गो. प. नेने, ' राष्ट्रवाणी ' पूना,

भाषा की उत्पत्ति, उन्नतिक्रम और वर्तमान रूप समझाने के लिए ऐतिहासिक तथा भाषिक पृष्ठ-भूमिका स्पष्ट और विस्तृत दी जाए तो परिचय पानेमें सामान्य पाठकको आसानी होती है। श्री. जैतलीजीने कुछ अंशतक विषयान्तर होनेका भय मान कर विषय को अधिक से अधिक सुसूत्र और सुस्पष्ट करने की कोशिश की है जिससे हमारे सामने भाषाका इतिहासकालीन चित्र उपस्थित हो जाता है। × × × × × ×

पुस्तक पढने के बाद भाषाके अभ्यासक अथवा सामान्य वाचकके लिए स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह सिन्धी-भाषा वैदिक-भाषाके समीपकी है। इस पुस्तक के लिए श्री जैतलीजी धन्यवाद के पात्र है। पुस्तक बहुत उपयोगी है। खासकर भाषा शास्त्र के अभ्यासकोंको उसका विशेष उपयोग होगा। सिन्धी एक साहित्यक तथा उन्नत भाषा है। देशमें उसे स्थान मिलनाही चाहिये।

' राष्ट्रवाणी ' पूना
अप्रेल १९५८

Dr. H. C. Bhayani

As the first serious attempt to present in Hindi an informative account of the Sindhi language, the 'Sindhi Bhashaka Sankshipt Parichaya' By Sri K. Jetley deserves to be welcomed. Although the mathod of treatment is traditional and the outlook outmoded, the book makes accessible interesting information about the historical background, chicf dialects and salient grammatical peculiarities of sindhi. ... ...

With his knowledge and industry, the author is well equipped to make a more critical, systematic and ambitious effort.

Bhawan's Journal
Bhmbay
20-4-58

(Sd.) Dr. H. C. Bhayani

रविवार सकाळ, मुंबई-पुणें, (२०-४-५८)

× × × × × × ×

'सिन्धी भाषाका संक्षिप्त परिचय' नावावरूनच सिन्धी भाषेची हिन्दी भाषेत ओळख करून देणारे हे पुस्तक आहे हे उघड होते. इंडो-आर्यन गटांतील सिंधी ही एक महत्वाची वाङ्मय भाषा आहे आणि भारताच्या फाळणीपासून सिंधी भाषेशी इतर भाषिकांचे संघटना फार झपाट्याने वाढत चालल्यामुळे अशा पुस्तकाची फार जरुरी आहे.

समय धर्म, तंत्रीः-श्री. दुलेराय काराणी, (सोनगढ-सौराष्ट्र, १-४-५८)

प्राचीन इतिहास अने भाषाओना प्रखर अभ्यासी अने संशोधक श्री. कृष्णचंद्र जैतलीअे आ पुस्तकनुं प्रकाशन करीने सिंधी भाषानी मोटी सेवा बजावी छे. शब्दोना मूलमां ऊंडा ऊतरीने एमणे शब्द

उत्पत्तिना इतिहास पर घणो सुंदर प्रकाश पाडयो छे. सिंधी भाषाना जुदा-जुदा प्रादेशिक प्रकारो घणीज रसिक पद्धति थी दाखला दलील साथे समजाव्या छे. सिंधी भाषाना व्याकरणना नियमो पण संक्षेपमां छतां सारी रीते समजावेल छे. आ पुस्तक हिंदी-भाषा अने देवनागरी लिपिमां छे, प्रत्येक भाषा प्रेमीए अने खास करीने सिंधी कच्छी भाइओए आ पुस्तक वसाववा जेवुं छे. ....

× × × × × × ×

श्री कृष्णचंद्र जैतली की प्रस्तुत कृति सिंधी-भाषा के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध होगी। सरल शैली में लिखी गयी इस पुस्तक में भाषा-शास्त्र के विभिन्न पहलुओं के साथ ही साथ सिन्धी के क्रमिक विकास पर भी संक्षेप में उतम प्रकाश डाला गया है। विशाल सिन्ध के अलग अलग भागों में बोली जानेवाली सिंधी भाषा के रूपों को भी स्पष्ट किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा स्वीकृत भाषाओं की पंक्ति में सिंधी को भी स्थान दिलाने के लिए विगत दिनों जो प्रयास हुए हैं और आज भी जारी हैं उनको श्री. जैतली की इस पुस्तक के कारण काफी बल मिलेगा। पुस्तक परिश्रमपूर्वक काफी अन्वेषण कार्य करने के बाद लिखी गयी है। यह ऐसी कृति नहीं कि जिसे सरसरी तौरपर पढकर अलग रखा जाय। ध्यान से पढकर संग्रह करने योग्य इस कृति का व्यापक रूप से स्वागत होना चाहिये।

नवभारत टाईम्स,

मुंबई, २९-६-५८

हिन्दुस्थान (दैनिक-सिन्धी) मुम्बई, १५-२-५८

" सिन्धी भाषा का संक्षिप्त परिचय " पुस्तक हिन्दी भाषामें पं. कृष्णचंद्र जैतली निहायत जाखोड, साधना, गूढे अभ्यास अइँ खोजना बादि तियारु कयो आहे । ....

असां मां शायदु किनि थोरनिखे सिन्धी बोलीअजे तवारीखजी जाण हुजे अइँ किनिखे जेकदहि इहा जाण आहे त शायदु अणपूरी बि हुजे । इन्हीअ वीचारखाँ पं. जेटलेंजो ही किताबु निहायत मुल्हाइती मालूमात दींदड़ु आहे । × × × ×

हिन पुस्तक में इहो देखार्यलु आहत सिन्धी भाषाजो मूलु इस्थानु कहिड़ो आहे । किथां इहा निकिती अइँ वक्त, इतिहास, सभ्यता वगैरहजे असर हेठि बोलीअमे फेरो ईन्दो वियो । सिन्धु-प्रान्तजे जुदा जुदा एरांजियुनिमें बोलीअमें कहिड़ो फेरो आहे इनजो चिटो जिक्रिरु कयलु आहे ।

श्री. जेटले हिन किताबमें सचल, शाह, सामी अइं बियनि संतनि अइँ कवियुनिजे किनि गीतनि वगेरहजा हवाला दिना आहिनि

हिन इहो बि देखार्यो आहे त सिन्धी भाषाजो वेदिक-भाषासां कहिड़ो अइँ कीअं सनबन्धु आहे ।

हिनवक्ति जदहि सिन्धी बोलीअखे भारतीय विधानमें स्वीकृत करणलाइ हलि-चालि हली रही आहे, तदहिं हहिड़ो किताबु हिन्दी भाषामें कढी पं. कृष्णचंद्र सिन्धी भाषाजी अमुल्हु सेवा कई आहे जंहिंलाइ हिन लाशकु खीरूँ लाहिण्यूं । × × × ×

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ६४ संवत् २०१६ अंक २

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

सिंधी भाषा का संक्षिप्त परिचय–

सिंधी भाषा पर यद्यपि अंग्रेजी में स्टैंक और ट्रंप आदि विद्वानों की पुस्तकें बहुत पहले निकल चुकी हैं जिनमें प्रामाणिकता के नाते ट्रंप अधिक विश्रुत है, किंतु हिंदी में इस दिशा में यह पहली पुस्तक हैं। ध्वनि और व्याकरण की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषाओं में सिंधीं का जो महत्व है उसे देखते हुए ट्रंप और टर्नर के बाद इस ओर गंभीर प्रयत्न का लगभग अभाव रहा। भारत विभाजन कें बाद कीं विपरीत परिस्थितियों में श्री जैंतली का इस ओर कलम उठाना उनकी विशेषलगन और भाषा प्रेम का सूचक है।

पुस्तक के पहले दो परिच्छेदों में सिंधीं के स्रोत और विकास आदि की चर्चा है। लेखक ने स्वयं माना है कि पैशाची और व्राचड़ आदि पर लिखते हुए वह प्रसंग से कुछ दूर हो गया है। भाषा और इतिहास के विस्तृत अध्ययन में उक्त चर्चा की आनुषगिकता में हमें आपत्ति नहीं। उक्त विवेचन को शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो कुछ बातोंमें मतभेद हो सकता है, जैसे कि 'पस्तो' शद्व को अधिक प्राचीन सिद्ध न कर उससे 'पैशाची' की संभावित व्युत्पत्ति बताना। किंतु पेरु मग असुर, दस्यु आदि पर व्यक्त विचारों में अनुसंधान और दिलचस्पी की बहुत सी सामग्री मिलती है जिसके जुटाने में लेखक द्वारा किया गया श्रम श्लाघनीय हैं। इसी प्रकार 'व्याकरण के बंधनों से मुक्त '.देशी भाषा या अपभ्रंश की, शद्वों की व्युत्पत्ति का चितन आरंभ होने पर मध्यम अवस्था या प्राकृत कहना गंभीर पाठकों को न रुचेगा किंतु दूसरी ओर आभीर औंर यादवों आदि से संबंधित बातें, बिशेष रूप से 'लाडी' से संबंधित विचार अनुसंधान के महत्व के हैं।

तीसरे और चौथे परिच्छेद में सिंधी की बिविध बोलियों का परिचय और व्याकरण हैं। बोलियों के प्रसंग में उनमें होनेवाले ध्वनि-परिवर्तन के विशिष्ट लक्षणों को देने से विषय कीं अध्ययनींयता बढ़ गई हैं। बोली के साथ श्री ग्रियर्सन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया'से उद्धृत लोकवार्ता के विभिन्न रूपांतर देना भी अध्येताओं के लिये रुचिकर होगा।

श्री जैंतली की प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करते हुए हमें आशा हैं कि यह पुस्तक सिंधीं ही नहीं अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के तुलनात्मक अनुशीलनकर्ताओं को भी अपनी ओर आकृष्ट करेगी।

–पूरन गिर गोस्वामी

सम्मेलन-पत्रिका

[त्रैमासिक]

(भाग ४४, संख्या–४)
आश्विन-मार्गशीर्ष, शक १८८०
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रस्तुत पुस्तक अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है, जिसमें सिन्धी भाषा का गंभीर ढंग से अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है। सिन्धी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन में युरोपीय विद्वानों–श्री ट्रम्प महोदय एवं श्री सर टर्नर के अध्ययन श्लाघनीय हैं। तत्पश्चात् इसके अध्ययन की प्रगति बिलकुल ठप्प हो गयी।

श्री जैतली जी ने "सिन्धी भाषा का संक्षिप्त परिचय" में सिन्धी भाषा के अध्ययन में स्तुत्य प्रयास किया है। पुस्तक में चार परिच्छेद है। प्रथम परिच्छद में सिन्धी भाषा के मूल स्त्रोतों की विवेचना की गयी है। मूल स्त्रोतों के विवेचन में कहीं-कहीं विषयान्तर प्रतीत होता है, जिसे लेखक ने स्वयं स्वीकार भी किया है। किन्तु इस विवरण में लेखक ने अनेक ऐसी बातें बतलायी है, जो खोज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने 'पैशाची' शब्द के रहस्य की सूक्ष्म बातें बतलायी हैं। पैशाची प्राकृत के तीन भेद हैं (अ) चूलिका पैशाची, (आ) कैकय पैशाची एवं (इ) व्राचड पैशाची, व्राचड पैशाची से व्राचड अपभ्रंश की उत्पत्ती हुई और इसी व्राचड अपभ्रंश से हिन्दवी, सिन्धी, एवं कच्छी तीन बोलियों की उत्पत्ति हुई।

द्वितीय परिच्छेद में शब्दों में परिवर्तन और उनके तत्त्वों का वर्णन किया गया है। संस्कृत, प्राकृत एवं अवेस्ता के कतिपय शब्द-परिवर्तनों की चर्चा कर के सिन्धी-भाषा के शब्द परिवर्तनों का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में सिन्धी-भाषा के भेद बतलाये गये हैं। सिन्धी के निम्नलिखित छह भेद हैं। –(१) सिराइकी, (२) विचोली, (३) लाडी, (४) थडेली, (५) कच्छी और (६) लासी। प्रत्येक भेद के स्वरूप का मनोरंजक विवेचन हुआ है। उनके उच्चारण, वचन भेद सर्वनाम, क्रियापद के स्वरूप भी दिये गये हैं। उनके हिन्दी में अनुवाद भी किये गये हैं।

चतुर्थ परिच्छेद में सिन्धी भाषा की अरबी सिन्धी लिपि, सिन्धी के निजी वर्णों एवं उसके सामान्य व्याकरण का विश्लेषण किया गया है। व्याकरण में १ संज्ञा, २ सर्वनाम, ३ विशेषण, ४ क्रिया, ५ क्रिया विशेषण, ६ संबंध-सूचक, ७ सम्मुचय बोधक, ८ विस्मयादि बोधक का संक्षिप्त किन्तु विद्वत्तापूर्ण परिचय दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक सिन्धी-भाषा के सीखने के लिए बहुत उपयोगी है। साथ ही तुलनात्मक भाषा-विज्ञानियों के लिए भी यह बड़े काम की है।

और उस विषय को संक्षिप्त रूपसे अच्छी तरह स्पष्ट कर लिखा है । अस्तु ।

पुस्तक लिखकर तैयार हो जाने पर प्रकाशन की बात उठी । धन का संकोच, और किसी धनवान से मांगने की अनिच्छा । इन सब बातों के कारण पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब होता रहा । दैव योगसे दिल्ली में अखिल-भारतीय ओरिएन्टल कान्फरेन्स् के १९ वें अधिवेशन होने की खबर मिली । मेम्बर बना । पुस्तक के प्रकाशन का साहस किया । सुदैवसे कान्फरेन्स् के दूसरे बुलेटिन में ' सिन्धी-विभाग ' के होने की सूचना मिली । अब और उत्साह बढ़ा । कान्फरेन्स् के सिन्धी-विभाग में पुस्तक के प्रकाशन की घोषणा के लिए सिन्धी-विभाग के अध्यक्ष श्री जयरामदास दौलतराम (भूत-पूर्व आसाम-गवर्नर), ओरिएन्टल कान्फरेन्स् के मुख्य अध्यक्ष श्री डॉ. ए. एस्. आलतेकर जी तथा लोकल सेक्रेटरी श्री, एन्. बी. बनर्जी से पत्र-व्यवहार किया और तीनों ही स्थानों से स्वीकृति के पत्र आये जिस के लिए मैं कृतज्ञ हूँ । इधर अवकाश न होते हुए भी डेक्कन-कॉलेज के संस्कृत-कोष-विभाग के डायरेक्टर तथा भाषा-विज्ञान के उच्च कोटिके विद्वान श्री एस्. एम्. कात्रेजीने पुस्तक की प्रस्तावना लिख दी, जिस के लिए मैं आप का आभारी हूँ । सब से बड़ी बात रही ' रामदास प्रेस ' की । यह प्रेस छोटा होते भी उसके मालिक श्री तानाजी तुर्के ने सब काम छोड़ कर पुस्तक के प्रकाशन का काम हाथ में लिया । पड़ोस के अन्य प्रेस-

मालिकोंमें ईर्षा उठी। कई बाधाएँ आईं। परन्तु मुझे कितना लाभ होगा, इस की इच्छा न रखते हुए भी वह लगन के साथ काममें जुट गया। यही इन्तजारी कि समय पर पुस्तक प्रकाशित हो जायें, और जबतक पुस्तक रहेगी तब तक मेरा नाम अमर रहेगा। एक छोटे से मन में कितनी चाहना है, यह सहृदय ही जान सकता है। उस को धन्यवाद देने की जरूरत क्या ?

इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में सुझाव देना और छपाई आदि कार्यों में जिनने मेरी निष्कारण सहायता की उन मेरे साथी श्री .... जी को मैं किन शब्दों से धन्यवाद दूँ ?

श्री गो. पं. आलेगाँवकर, जिनने मेरी पुस्तक की पाण्डु-लिपि की प्रेस कापी बनाई, उनका धन्यवाद है।

अन्त में कम्पाजीटर भाई–जिन में श्री वि. गं. जोशी, श्री प्र. कृ. पारखे, श्री द. मा. लांडगे आदि–हैं, उन सबकी कार्य-शक्ति को मानते हुए, नमस्कार–पूर्वक धन्यवाद ही तो दे सकता हूँ।

यह कहना व्यर्थ होगा कि पुस्तक के प्रकाशन में कितनी तकलीफें होती हैं। वास्तव में मेरे लिए यह प्रथम ही अनुभव है। बहुत सावधनी रखने पर भी पुस्तक में जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो उनके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

पदमजी कम्पाऊण्ड,
भवानी पेठ, पूना–२.
१८।१२।१९५७.

कृष्णचन्द्र जैतली

FOREWORD

I have great pleasure in acceeding to the request of Sri K. T. Jetley to introduce his little book on Sindhi language. Sindhi is one of the most interesting of languages belonging to the Indo-Aryan group, having, as a general rule, preserved the vowel quantities in initial syllables, in opposition to the general tendencies in other Indo-Aryan languages to reduce this quantity in heavy syllables. It is, however, a matter of regret that since Trumpp's Grammar of the Sindhi Language which appeared in 1872 and Sir Ralph Turner's two papers on Recursives and Cerebralisation in Sindhi during the present century, no serious linguistic study has appeared. The authorities of the Language Project at the Deccan College had found it difficult to interest even a single competent Sindhi Scholar in undertaking a descriptive analysis of his language. It is, therefore, all to the credit of Sri K. T. Jetley who, though not a professional linguist, has great love for his language and has devoted a great deal of time and research in writing out this Introduction. It is possible that on several points both professional historican and linguists may not see eye to eye with him. Despite these handicaps and lack of recognition Sri Jetley has been able single-handed to put together so much interesting material within the confines of a single book. In one sense his work is pioneering, for this appears to be the first serious description of Sindhi in the official language of India. Sri Jetley has shown the chief characteristics of Sindhi and illustrated a few of his statements with suitable texts representing different varieties of Sindhi. While congratulating Sri Jetley on his

excellent performance, I may be permitted to express the hope that this will become the starting point of a new series of publications giving descriptions of current Sindhi as spoken by different groups. The Language Project at the Deccan College has trained a number of descriptive linguists and during the next two years hopes to draw some representatives of the Sindhi language within its fold of trainees. Sindhi, one of the important literary languages in the Indo-Aryan group, is now faced with unique situation after the partition of India. Pockets of Sindhi speakers will be found surrounded by speakers of other Indo-Aryan and Dravidian languages and there is greater interaction between these, than would have normally been possible under historical circumstances. This cataclysm has opened a kind of 'language laboratory' in which one can actually study the nature of this interaction and the results which follow from that. A time like this is quite unique and opportune for descriptive linguists. The late Dr. Banarasidas Jain had suggested to the Conference of Linguists and Educationists called by the Deccan College Poona in 1953 that this was one of the most urgent tasks for Linguistics and I fully endorse the late doctor's opinion. It gives me great pleasure to commend this work of Sri Jetley both to lovers of Sindhi and to linguists.

Deccan College, Poona-6.
16th December, 1957

S. M. KATRE

———

प्रथम परिच्छेद

सिंधी भाषाका मूल स्रोतः-

भारतके वायव्य-कोणकी भाषाओंकी उत्पत्ति पैशाची प्राकृतसे मानी गई है। गुणाढ्य कविने पैशाची-प्राकृतमें "बृहत्-कथा" नामका ग्रंथ लिखा था। आज उसका "बृहत्-कथा मञ्जरी" तथा "कथा सरित्सागर" नामोंसे संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है। पैशाची -प्राकृत के तीन भेद माने गये हैं[२]।

अ) चूलिका पैशाची।

आ) केकय पैशाची।

इ) व्राचड पैशाची।

पैशाची शब्दका रहस्यः-

पैशाची प्राकृतके इन सब भेदोंको जाननेसे पूर्व "पैशाची" शब्दका रहस्य जानना परम आवश्यक है।

---

१ सं. सा. सं. अि। पृ. २९४

२ सिं. बो. ता.। पृ. ३८। पं. १२

'पैशाची' शब्दका अर्थ है — पिशाचोंकी अेवं वे लोग जहाँ रहते थे अुस प्रदेशकी भाषा।

अब प्रश्न यह अुठता है कि वे पिशाच लोग कौन थे? और अुनका प्रदेश कहाँ था?

संस्कृत के विद्वानोंको यह मालूम है कि—संस्कृत भाषा के कोष और पुराण आदि ग्रंथोंमें पिशाचोंको देवयोनिमें गिना गया है[1]। मालूम होता है कि भारत वासियोंका कालांतरमें जिन जातियों से स्थानांतरके बाद संबंध छूट गया, जो जातियाँ पहाड़ोंपर और दूर देशों में रहती थीं, उनको भारतीय पुराणोंमें देवयोनिमें माना गया, एवं उनके संबंधमें बड़ी बड़ी विचित्र कथाएं गढ़ी गयीं। अन्यथा वे सब इसी मृत्यु लोकके निवासी थे। आज विद्वानोंके अन्वेषणात्मक कार्यों से गंधर्व और किन्नरोंके मानव होनेकी बात सिद्ध हो चुकी है। पिशाच लोगों के बारेमें भी बहुत कुछ अन्वेषण हो रहा है। हमारे प्रस्तुत विषयका संबंध उनसे होनेसे यहाँ उस विषयको विस्तारसे लिखना आवश्यक है।

---

१ "विद्याधरोऽप्सरो यक्ष-रक्षो गन्धर्व-किन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥" अ. को. १-११
देव सर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः यक्षरक्षांसि चारणाः॥२७॥
भूत-प्रेत पिशाचाश्च विद्याधराः किन्नरादयः।
श्री. म. भा० स्कं. ३-अ-१०

मैंने 'सिंधु की मूल संस्कृति और उसका विकास' नामक अपने निबंधमें बताया है कि ऋग्वेदके समय आर्योंकी निवासभूमि असीरिया, कश्यपसागर, कृष्णसागर, भूमध्यसागर, लोहितसागर और सप्तसिंधु तक थी[1]। समयानुसार वैदिक आर्य जैसे जैसे एक दूसरेसे अलग होते गये, वैसे परस्परकी स्मृतियाँभी धुंधलीसी पड़ने लगीं। उदाहरणार्थ हम 'पेरु', 'पेरुक' और 'पेरव' शब्द लेते हैं। ऋग्वेदमें ये शब्द देवता, राजा और प्रजा के अर्थ में आये हैं[2]। लेकिन वर्तमान भारतमें न कोई इस नाम का देवता है और न कोई प्रजा[3]। किन्तु प्राचीन इजिप्त के इतिहासमें इसका परिचय मिलता है। उस समय वहाँ के राजा अपने को Phraoh [Fā' Rō = फ़ा'रो] उपाधिसे सुशोभित करनेमें गौरव मानते थे।

---

१. सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग। भा. ३४। संख्या १०-१२
वि. सं, २००४

२. ऋ वे ७।३५।१३॥, ६।६३।९॥, ९। ७४। ४॥

३. भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूनाके ४१ वें वार्षिक. सम्मेलनके अवसरपर (शक १८७६ दि. ३१-५-५४) मैंने संस्कृतमें 'पैशाची प्राकृतस्योद्भवस्थानम्' नामके निबंधमें (यह निबंध उपरोक्त मंडल के त्रैमासिक, वर्ष ३६ अंक १-४, शक १८७७ में प्रकाशित हुआ) 'पेरु' शब्द का संबंध (संदेहात्मक चिन्हके साथ) दक्षिण अमरीकासे बताया था। परंतु बादके अध्ययनसे इस मतमें परिवर्तन करना पड़ा है।

प्राचीन कालमें वहाँ के निवासी—'Ra' = रा नामसे सूर्यदेवकी उपासना करते थे। हिब्रू भाषामें Ph 'Ra', फ'-रा, सूर्य वाचक शब्द है[1]। श्री सायणाचार्य ने 'शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु' ऋ० ७।३५।१३॥ इस मंत्रमें 'अपां नपात्' को मुख्य देवता मानकर 'पेरु' शब्द को विशेषण माना है। परंतु मेरे विचारसे यहाँ 'पेरु' शब्द प्राचीन इजिप्तके सूर्य देवता 'Ph 'Ra' का वाचक है और 'अपां नपात्' उसका विशेषण है।

यद्यपि ऋग्वेदमें (मं. २। सू० ३५) एक पूरा सूक्त 'अपां नपात्' नामके स्वतंत्र देवताकी स्तुतिमें दिया गया है, फिरभी कई जगह 'अपां नपात्' शब्द विशेषण के रूपमें भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे- अपां नपाज्जात वेदः ऋ.१०।८।५॥ अपां नपाद्वायुः ऋ. १०।९२।१३॥ 'अपां नपात्सविता' ऋ० १०।१४९।२॥' अपां नपातमवसे सवितारमुपस्तुहि ऋ० १।२२।६॥ इस प्रकार ऋग्वेदमें 'अपां नपात्' शब्द अन्य देवताओं के साथ साथ 'सूर्य' का भी विशेषण है। ऋग्वेदकी १०।१४९।२॥ तथा १।२२।६ ऋचाओंका देवता 'सविता' (—सूर्य) है। इससे यहाँ 'सविता' मुख्य देवता है और 'अपां नपात्' (जिसका अर्थ है जल का शोषण करनेवाला) उसका विशेषण है। ऋग्वेदके मं. ७। का ३५। सूक्त शांतिकर्म के लिये है जिसमें भिन्न भिन्न देवताओंसे शांतिकी

1. 'The Religions of the Ancient World' (By- G. Rawlinson, M. A.) Chapter I. The Religion of the Ancient Egyptions pp. 27.

प्रार्थना की गई है। सूर्य के 'मित्र' (ऋ. ७।३५।४॥) 'वरुण' (ऋ. ७।३५।४॥) 'आदित्येभिः' [७।३५।६॥) सूर्यः [ऋ. ७।३५।८॥] 'विष्णुः' (ऋ. ७।३५।९॥) 'सविता' (ऋ. ७।३५।१०॥) आदि अनेक नामों के साथ 'पेरु' नामसे भी उससे शांतिकी मांग की है, इसमें कोई संदेह नहीं। असीरिया और इजिप्त आदि देशोंमें प्राचीन कालमें सूर्य को प्रधान देवताका पद प्राप्त था। इस लिये वहाँ के राजा भी इष्ट देवकी छत्र छायामें रहने के लिये अपने नामके साथ 'पेरु' [Fa'Ra] शब्द जोड़ते थे।

ऋग्वेदमें [६।६३।९॥] भरद्वाज ऋषिका आश्रयदाता 'पेरुक' नाम का राजा था। । निश्चितही यह कोई प्राचीन इजिप्तका राजा होना चाहिये। सिंधी भाषामें आजभी 'फेरुमल' यह पुरुषोंका नाम होता है। क्या मालूम कि यह 'फेरु' शब्द सिंधी 'फिरणु' [=घूमना, फिरना] धातुसे बना है, या प्राचीन 'पेरु' (Fa'Ra) शब्दसे संबंध रखता है ? दक्षिण भारतमें भी 'पेरु' नाम मिलता है। संस्कृतके प्रसिद्ध कवि जगन्नाथ के पिताका नाम 'पेरु भट्ट' है[1]।

भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना के महाभारत संशोधन विभाग में कार्य करनेवाले मेरे मित्र श्री. के. वी. अनंत नारायण शास्त्रीजी की सूचना के अनुसार तमिल भाषामें 'पेरु' शब्द का अर्थ है 'महान्' जैसे 'पेरु दवि' [पेरु + उदवि] = महान् उपकार। वहाँ भगवान विष्णु को भी नाम है 'पेरुमल' [अर्थात्--महाविष्णु]

१. भामिनी. विलास, भूमिका. टिप्पणी और अनुवाद कर्त्ता शि. म. परांजपे। सन १८९५, विट्ठल प्रेस पूना।

यद्यपि कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तरीय आरण्यक आदि अन्य स्थानोंमें पेरु शब्द सूर्य का विशेषण होके काम आया है, वहाँ भी उस शब्द का श्री सायणाचार्यजीनें 'पालक' यही अर्थ किया है[१]।

ऋग्वेदमें दूसरे शब्द आते हैं, 'परावत' और 'अर्वावत' जो दूर और सामीप्य के अर्थ में प्रयुक्त हुवे हैं[२]। जिस समय सप्त सिंधु-वासी आर्योंने वैदिक ऋचाओंका संग्रह और रचना की उस समय उनको 'परावत' [= फरात' युफ्रेटस] नदी दूर पडती थी और अर्वावत [अरब-देश] समीप पड़ता था। इस लिये वे दोनों शब्द दूर और समीपताके द्योतक बन गये। ऋ० में 'अर्वा' शब्द घोड़े के लिये आया है[३], आज भी अरब देशके घोड़े विश्वविख्यात हैं।

---

१. 'आ यस्मिन् सप्त पेरवः। मेहन्ति बहुलां श्रियम्'।

कृ० य० तै० आर० प्र० १। उ० ११।ऋ. ४॥

"अच्युतां बहुलाँ श्रियं सहरिर्वसुवित्तमः पेरुरिन्द्राय पिन्वते॥'

कृ० य० तैं० आ० प्र० ३। अनु. ११। ऋ० ५॥

२. ऋ० १०।१३७। २॥. ६।४५। १॥ आदि.श्री. एस. के दीक्षित. कहते है। 'The river Euphrates is still Khown as 'Frāt' or 'Shatt-el-Fara' in his Babylonian life and History., 'Mother Goddess' By S. K. Dixit pp. 61. 65.

३. ऋ १।७३।९॥, १।११५।१॥, १।१६२।१४॥. ६।४६।१॥; ६ ४५।१२॥

वैदिक आर्य एक बारगी तो परावत से सप्त सिंधु तक नहीं पहुँचे होंगे ! जरूर इस बीचमें बहुत समय गुजर गया होगा, कई पीढ़ियाँ बीत गई होंगी । यह बात कितनीही वैदिक ऋचाओंसे स्पष्ट होती है कि वे अपने बाप दादोंकी सुनी हुई बातें कह रहे है[१]।

इनके अलावा ऋग्वेदमें अनेकों शब्द हैं जिनसे सप्त-सिंधु-वासी आर्यों के पूर्वजोंका संबंध दूर दूर देशों से था। 'मना' शब्दका लीजिये यह ऋग्वेदमें (मना हिरण्यया ऋ. ८।७८।२॥) स्वर्ण-मुद्राके अर्थ में आया है। भारतमें स्वर्ण-मुद्राके लिये 'मना' शब्द का प्रयोग नहीं है। परंतु प्राचीन बाबीलोनिया, असीरिआ और यूनानमें स्वर्ण एवं रजत मुद्राके लिये 'मना' शब्द का प्रयाग मिलता है[२]। इस प्रकार कीकट शब्द भी है।

'किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम् ।

---

१. 'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनै रुत०' ऋ १।१।२॥ 'इति शुश्रुम०' ईशावास्योपनिषद् । आदि ।

2. Mi'na (mi'nā) Minoe (nē), E, Minas (nāz), also Maneh, Manah. [I. Mina, Fr. Gr. μνᾶ, of Semitic origin Cf. Heb. Māneh] An ancient weight and money unit of varying value, one Sixtieth of a talent. In the Babylonian system 60 shekels for silver and gold. In Syria and Palestine the 50 shekel mina was the usual one. (A heavy mina would thus be equal to 100 light shekels.) In Greece the mina was equivalent to 100 drachmae.

Webster's " New International Dictionary of the English Language " London 1911.

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः ॥

॥ ऋ० ३ । ५३ । १४॥

इस ऋचामें कीकट और प्रमगन्द ये दो शब्द आये हैं। श्री सायणाचार्य 'मगन्द' का अर्थ करते हैं 'सूदखोर' और उसकी संतति 'प्रमगन्द' कही जाती है। (अर्थात सूदखोर की औलाद)। विद्वानोंका विचार है कि 'मगन्द' शब्द का संबंध मग जाति के लोगों से था, जो मीडियामें रहनेवाली मेद (Med) जातिकी एक शाखा थी[1]।

सूदका काम व्यापारी ही करते हैं। उस जमानेमें वहाँ मगों के अलावा फोइनिशिअन्स (Phœnicians) और आर्मिनिअन्स (Armenians) नामक व्यापारी जातियों का भी उल्लेख मिलता है। 'सिंधु की मूल संस्कृति और उसका विकास' नामके निबंध में मैंने बताया है कि फोइनिशिअन्स आर्मिनिअन्स् और वैदिकपणि एकही थे[2]। पणि लोगों द्वारा इन्द्रकी गौओं के चुराये जानेकी कथा ऋग्वेदके म० १०। सू० १०८ में प्रसिद्ध है। भूमध्य सागर में फोइनिशिअन्स् लोगोंकी प्रथम बस्ती साइप्रस (Cyprus) और दूसरी बस्ती क्रीट (Crete) थी जिसको कीकाट भी कहा जाता था[3]।

---

1. The Medes were divided in to six tribes, whose names Herodotos has Preserved for us--Busœ, Paretaceni, struchtes, Arizanti, Budii and Magi'

A. P. I. C, PP. 27

२. 'सिंधुकी मूल संस्कृति और उसका विकास'। सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग भा० ३४, संख्या १०-१२ श्रावण-आश्विन. सं २००४.

३ आशीरिया (मराठी भाषामें) पृ. ७६.

मेरा विचार हैं कि यह क्रीकाटही वौदिक कीकट देश होना चाहिये। ऊपरकी वैदिक ऋचामें विश्वामित्र इन्द्रसे कहते हैं कि कीकटमें गौओं के होने का कोई उपयोग नहीं (कारण वहाँ के निवासी उन गौओं का दूध हवन आदि कर्म में काम नहीं लाते । सायण) इस लिये वे हमें दे दो (क्यों कि हम उनका दूध हवन आदि कर्ममें लाअेंगे, जिसका उपयोग तुम कर सकते हो)। और प्रमगन्द का धन भी (उससे लूटकर) हमें दे दो (जिसका हम हवन आदि कर्म में उपयोग करेंगे)।

इससे यह स्पष्ट है कि कीकट के रहवासी धार्मिक क्रियाओंमें विश्वास नहीं रखते थे। पणि लोगों के स्वभावका वर्णन करते हुए ऋग्वेदमें कहा है कि वे यज्ञहीन, जल्पक, झूठ, बोलनेवाले, सूदखोर, और श्रद्धाविहीन थे[1]।

इस विवरणसे यह निश्चय होता है कि ऋग्वेद कालीन कीकट भूमध्य सागर का क्रीकाट या क्रीट था। बाकी पुराणों में जो विहार के लिये कीकट नाम आता है वह मगोंकी ऋग्वेदके बादकी बस्ती है। कारण ऋग्वेदके भू-गोलका अध्ययन करनेसे यह मालूम होता है कि ऋग्वेद-कालीन लोग बिहार प्रान्त तक पहुँचे ही नहीं थे। अस्तु।

उन वैदिक आर्योंका सप्त सिंधु तक पहुँचते हुए बीचमें जिन स्थानिक जातियोंसे परिचय हुआ, वे थीं पिशाच, अप्सरस्, यक्ष,

१. न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्र प्र तान्द स्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारा परॉं अयज्यून् ॥ ऋ ७।६।३॥

रक्षस् और गंधर्व[1]। उनमेंसे जिनके साथ वैदिक आर्योंकी मुठ–भेड़ हुई वे पिशाच और रक्षस् जातियाँ थीं। नवागंतुक और आदिवासियोंका परस्पर विरोध होना स्वाभाविक है। अप्सरस् और गंधर्व ललित कला प्रिय होनेसे उतने झगड़ालू नहीं थे। ऋग्वेदमें यक्षोंके जनपदका उल्लेख मात्र है। हमारा प्रस्तुत विषय 'पिशाच' होनेसे इतनाही कहा जायेगा कि ऋग्वेदमें केवल एकबार स्त्रीलिंगमें उसका प्रयोग हुआ है और वह भी विरोध की भावनासे। गोपथ ब्राह्मणमें 'पिशाच वेद' का उल्लेख है[2]। आश्वलायन श्रौत सूत्रमें 'पिशाच विद्या' का निर्देश है[3]। भगवान् पाणिनि मुनिने 'पार्श्वादि गण' में आयुधजीवि

---

१. 'पिशाचिं' ऋ. २।११३।५॥, अप्सरस: ऋ. ७।३३।९-१२॥. ९।७८।३॥, ९।१३६।६॥, १०।१२३।५॥. यक्षवः (जनपदाः) ऋ. ७।१८।१९॥, १०।८८।१३॥, गंधर्व-ऋ. १०।१३९।४-५-६॥ गांधर्वी (-वाचं) ऋ. ५०।८०।६॥ गंधारीणां–ऋ १।१२७।७॥ रक्षस्–ऋ. १।२१।५॥१८६।९॥ आदि.

२. "सर्पवेदं, पिशाचवेदं, असुरवेदं, इतिहासवेदं, पुराणवेद मिति"

गो॰ ब्रा॰ प्र॰ १। मं. १०॥

३. '××× तान् उपदिशति, पिशाचविद्या-वेदः' ××॥

आश्व. श्रौ. सु. उत्तरषट्कस्य चतुर्थे सप्तमी कंडिका।

संघों में पिशाचों को रखा है[1]। महाभारतसे मालूम होता है कि पिशाचोंकी संततिने बाल्हिक देश बसाया[2]। कच्छ प्रांतसे उपलब्ध दो प्राचीन मुद्राओं का लेख पढ़नेसे यह स्पष्ट होता है कि उन पिशाचों में चातुर्विद्य (= चारों वेदों के जानकार ब्राह्मण) लोग भी थे[3]।

वैदिक आर्योंका जब आदिवासी पिशाचों के साथ संपर्क बढ़ने लगा और धीरे-धीरे उनकी भाषासे जैसे परिचित हुअे वैसे उसकी मधुरता पर वे लट्टू हो गये। और 'पिशा-गिरः' (ऋ० ७।१८।२॥) कह कर उसको स्मरण किया। वैदिक व्याकरण के नियमानुसार यहां (पिशा-गिरः) 'सुपां व्यत्ययः' हुआ है[4]। संस्कृतमें 'पिश्' धातु 'अवयव' अर्थ में आया है[5]। निरुक्तकारने

१. "पार्श्वादि यौधेयादिभ्योऽणञौ" पा. सू ५।३।११७।।
पर्शु, असुर, रक्षस्. बाल्हिक, वयस्, वसु, मरुत्, सत्वत, दशार्हः पिशाच, अशनि, कार्षापण, इति पर्श्वादि।

२. बहिश्च नाम ल्हीकाश्च विपाशायां पिशाचकौ।
तयोरपत्यं बाल्हीकाः नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ॥४४॥ महा. कर्ण. अ २।

३. सुमनो विनिर्गत, पिशाच चातुर्विद्यस्य ॥
Two seals from cutch-By D. B. Diskalkar.
Indian Historical Quarterly–Vol.II.

कलकत्ता १९२६.

४ "व्यत्ययो बहुलम्" पा. सू. ३।१।८५॥

५. पिश = अवयवे; तु. अक. से. प.प.।

'पिश' का अर्थ रूप किया है[1]। ऐ० ब्रा० में 'पेशा' शब्द अलंकार अर्थ में आया है[2]। 'पेशल' शब्द का मूल भी यही धातु है जिससे मृदुता, माधुर्य, सौंदर्य आदिकी झलक आती है[3]। इसीलिये संस्कृत और प्राकृत भाषाके कवियोंने 'पैशाची' को 'सरसरचनं भूतवचनम्' कहा है[4] और काव्यका शरीर माना है। यहाँ 'भूत' शब्द 'पिशाच' जातिके लिये आया है। इसलिये 'पैशाची' को 'भूत-भाषा' भी कहा जाता है। 'भूत' शब्दसे भूतान प्रदेशकाही निर्देश होगा कारण भूत और पिशाच जातिके लोग पार्वत्य प्रदेशपर पडोसमें रहनेवाले थे। अतः दूर

१. 'पेश' इति रूपनाम पिंशते. । निरु. ८।११ ॥

२. 'पेशावा एत उक्थानां." ऐ. ब्रा. अ. ११। खं. १०।
पेशा: = अलंकाराः । इति सायणः ।

३. पेशल--
I Soft, tender, delicate, lovely, charming Decoreted· adorned, लं· n. Beauty.
A Concise, Sanskrite–English Dictionarys
By विद्याधर वामन भिडे B.A. पूना १९२६.

४. 'गिरः श्रव्या दिव्याः प्रकृति मधुराः प्राकृतधुरः ।
सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम् ॥'
राजशेखर कृत बालरामायण– १।११॥

'ससंस्कृतमपभ्रंशं लालित्यालिंगितं पठेत् ।
प्राकृतं भूत-भाषाञ्च सौष्ठवोत्तर मुद्गिरेत् ॥' काव्यमीमांसा अ. ७

'संस्कृतं प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूत-भाषितम् ।
इति भाषाचतस्रोऽपि यांत काव्यस्य कायताम् । वा.अलं.२०।१।३॥

देशके लोग उन दोनोंको कभी एक मान लेते होंगे। संस्कृत कोष और उनके टीकाकारोंने 'पिशाच' शब्द की व्युत्पत्ति 'पिशितं मांसं अश्नाति' ऐसी की है यह उनके आहार व्यवहार को देखकर की गई होगी। क्यों कि वे लोग शीत प्रधान हिमालय की उपत्यकाओंमें रहने के कारण प्रचुर मात्रामें मांस मैरेय आदिका व्यवहार करते होंगे। हो सकता है कि अहिंसावादी आर्योंने उसी व्यवहारके कारण उन पिशाचोंको देवयोनीमें होते भी कुत्सित मान लिया। परंतु देश-कालानुसार खान-पानका भेद होनेपर कोई कुत्सित थोड़ेही माना जा सकता है? श्री वासुदेव शरण अग्रवालजीने ठीकही लिखा है कि –

"पिशाच--यद्यपि कच्चा मांस खानेवालों के लिये यह सामान्य शब्द था, पर ग्रियर्सन् ने सिद्ध किया है कि उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेशमें दरदिस्तान चितरालके लोगोंका व्यापक जातीय नाम पिशाच था। क्यों कि उनमें कच्चा मांस खानेका किसी समय बहुत रिवाज था। काफिरिस्तानके दक्षिण आधुनिक लमगान (प्राचीन लंपाक) के पड़ोसी पशाई काफिरोंकी पहचान हर्नलीने पिशाचों से की थी जिसे ग्रियर्सन्ने भी ध्वनि-शास्त्रकी दृष्टिसे समीचीन माना था। (पिशाच जे. आर्. ए. एस्. १९५०-२८५-८८) पार्जिटर ग्रियर्सन् से सहमत थे। उनका कथन है कि पिशाच वास्तविक जातिकी संज्ञा थी, उसीका विकृत रूप दैत्य दानव वाची पिशाच शब्द में आ गया। (जे. आर्. ए. अेस्. १९१२ पृ. ७१२) पैशाची प्राकृतकी अनुश्रुति इतनी पुष्ट है कि उसके बोलनेवालों के अस्तित्वमें संदेह का कारण नहीं।"

पाणिनी कालीन भारतवर्ष अ० ७। परि० ७। पृ. ४६१.

सिंधी-भाषामें 'पिशाच' शब्द का रूप 'पिसाचु' होता है। प्राकृतमें इसके रूप पिसाओ, पेसायो और पिसायो होते हैं। कुवलयमाला कथामें उनकी भाषाको 'पेसाया' कहा गया है[1]। यह भाषा इतनी प्रसिद्ध हुई कि आगे चलकर प्राकृत 'पिस' शब्द संस्कृतमें भाषा अर्थ में रूढ हो गया। शक भाषा में बिशा (= Biśa) वाणी के अर्थ में आया है[2]। बिशा और पिश एकही अर्थ के द्योतक है। संभव है कि पाणिनि धातु पाठमें भाषा अर्थ में आये हुए 'पिस्' धातु का मूलभी यही हो[3]। यह प्रसिद्ध है कि अफगानिस्तानकी भाषाको 'पश्तो' कहा जाता है। भाषा=विज्ञान की दृष्टिसे 'श्त' प्राय: 'श्च' में बदल जाया करता हैं। इस प्रकार 'पश्तो' का 'पश्चो' - 'पिश्चों' पिशाचो और पिशाच:' यह संस्कृत रूप बनना संभव है।

पश्तो-भाषा-भाषी और उनका प्रांत अतिप्राचीन है यह बात इससे स्पष्ट है कि यहाँ के निवासी अपने को 'पख्तून' तथा अपनी भाषाको 'पख्तो' कहते हैं। वेदमें 'पक्थास:' (ऋ० ७।१८।७॥) पदसे वहाँ के निवासियोंका और 'पक्थं' (ऋ० ८।२२।१०॥) पदसे वहाँ के राजा का उल्लेख है। भाषा

---

१. 'अरे: अत्थि चउत्थी भासा पेसाया' । कुवलयमाला कथा।
2. Saka studies, PP. I25.
३. पिसिं = भाषायां, चु पिंसयति ।

वैज्ञानिकोंका यह मत है कि वैदिक ' पक्थ ' पदसेही ' परख्तून ' और ' पठान ' शब्द बने हैं।

पश्तो-भाषियोंकी राजधानी ' कंदार ' प्रसिद्ध है। वैदिक-भाषामें इसको ' गंधार ' कहा गया है। इसमें संदेह नहीं कि ऋग्वेदमें ' गांधर्वी वाचं ' (ऋ० १०।८०।६॥) पदसे वहाँकी भाषा का स्पष्ट निर्देश हुआ है। वैदिक निघण्टुमें ' गांधर्वी ' शब्द ' वाक् ' अर्थ में पढा गया है (नि० ११)। यद्यपि पिशाच, गंधर्व और भूत विभिन्न जातियाँ थीं, फिरभी पडोसमें रहने के कारण समान शब्दोंसे व्यवहृत होती रही हैं। जिस प्रकार पाकिस्तान होनेसे पूर्व मुंबई में सिंधियोंको मुलतानी कहा जाता था।

इतिहासज्ञोंकी दृष्टिसे ' पिशावर ' शहर पश्तो-भाषियोंकी नई बस्ती है[1]। फिरभी यह नाम अपनी प्राचीनताको बता रहा है। अर्थात् ' पिशा ' नामकी भाषाका ' वर ' अर्थात् श्रेष्ठ स्थान। स्मृति कायम रखने के लिये अपनी प्रिय वस्तुका नाम अन्य वस्तु को देना यह परिपाटी पुरातन कालसे चली आ रही है। जैसे सिंधियोंने वैदिक कालीन सिंधु से उतरकर पुराण-कालीन सौवीर प्रदेशको तथा गुर्जर लोगोंने पंजाबसे उतरकर आनर्तको (कच्छ, काठयावार, और बडोदा राज्य) आत्मसात् कर लिया।

अब हम फिर अपने विषयपर आते हैं। पश्तो भाषा का मूल

१. भा. भू. पृ. २४। पं. २५.

मदी भाषा कही जाती है जो अवेस्ताकी भाषा का भी मूल मानी गई है[1]। ऋग्वेदमें " मन्द्रागिरः (मन्द्राःमोदमानाः गिरः ' इति-सायणः) (ऋ० ७।१८।३॥) से मदी का उल्लेख है। यदि मदी भाषाको शक-भाषा भी कहा जाय तो कोई अयुक्त नहीं, कारण शकों का मूल स्थान मद-देश (उत्तर मद्र=मोडिआ) था। इस कारण उनको मेद (Mede) भी कहा जाता था। मेदोंकी प्रधान जातियाँ छः थीं। जैसे बुसई, परेतसेनी, स्त्रुचत, अरीझंती, बुदी और मगी[2]। पाणिनीय व्याकरणमें अनेक ' कंथा ' पदांत नगरोंका उल्लेख है। कंथा शब्द मूल शक-भाषा का है और उसका अर्थ है ' नगर '। इससे यह सिद्ध है कि पाणिनिसे भी बहुत पहले शकोंका संबंध भारत वर्ष से रहा है[3]। आज यह बात निश्चित होती जा रही है कि-शक आर्य थे। मैंने ' अपि मघवा इंद्रोमगः ' इस अपने संस्कृत निबंधमें यह बतानेका प्रयत्न किया है वैदिक इंद्र जिसका ' मघवा ' नाम है वह मग अर्थात् शक जातिका था। ऋग्वेदमें बहुत जगह ' मघ ' शब्द धन अर्थमें आया है। इसलिये अिन्द्रको ' तुवीमघ ' यह विशेषण दिया है। ऋ० (१।२९।१॥)। यज्ञोंमें पशु आदि बहुतधन प्राप्त होनेके कारण ही अिन्द्रको ' मघवा '

१. भा० भू० पृ० २२४। पं २५.

2. The Medes were divided into six tribes, whose names Herodstos has preserved for us. Busœ, Paretaceni, Struchates, Arizanti, Budii, Magi.

A. P. I. C. P. 27.

३. पाणिनि-कालीन भारतवर्ष-पृ० ८२

नाम मिला। मघ और मख एकही शब्द है ऐसा शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है[1]। वास्तवमें 'मख' यह जातिवाचक शब्द है। इस जातिके लोग बहुत धनवान् (पशु आदि धन) होते थे। यज्ञों में भूरि दक्षिणा देते थे। अतः मख लोगोंके द्वारा किये गये यज्ञ भी मख नामसे प्रसिद्ध हुए। यह 'मख' शब्द का विकसितार्थ है, जैसे 'गवेषण' शब्द मूलतः ऋग्वेदमें गौओंको ढूंढनेके अर्थ में आया है। (गो+एषण = गवेषण)[2] बादमें यह शब्द किसीं भी अन्वेषण कार्य में प्रसिद्ध हुआ। अस्तु।

मख लोगोंका ऋग्वेदमें उल्लेख आया है 'अप श्वानमराधसं हता मखंन भृगवः' (ऋ० ९।१०१।१३॥) इस प्रकार मघ और मख का मग रूप भी हो सकता है। ऋग्वेदमें वर्णित मखलोग शक जातिके मगही होने चाहिये। स्व० श्री डॉ. तारापोरवाला का विचार था कि 'जरथुष्ट्र स्वयं मग जातिके थे। उस समय के मग अविवाहित रहते थे और पौरोहित्य करते थे। भारतका मगध देश भी मग लोगोंकी बसाई हुई बस्ती है।'

मग लोग शकों के पुरोहित थे, और उनका इष्ट देव सूर्य था, इस विषयमें आज कोई विवाद नहीं। वे लोग 'मित्र' नामसे

---

१. "स उ एव मखः स विष्णुः। तत इन्द्रो मखवानभवत्
मखवान् ह वै तं मघवानित्याचक्षते परोक्षम्।
शत० १४।१।१।१३॥

२. ऋ० ६।५६।५॥, ७।२०।५॥, ८।१७।१५॥,

सूर्य की उपासना करते थे। ऋग्वेदमें भी सूर्य का मित्र नाम आता है[1]। यही मित्र शब्द प्राचीन पर्श्यन भाषामें ' मिथ्र ' नामसे पूजा जाता था[2]। मिथ्रकाही बदला हुआ रूप मिहिर है। मार्कण्डेय पुराणमें ' मिहिर ' नामसे सूर्य की स्तुति की गई है।

' भव-तिमिरासव-पान मदाद्भवासि विलोहित-विग्रहः ।
मिहिर ! विभासि यतः सुतरां त्रिभुवन-भावन ! भा-निकरैः ॥

मार्क० १०७।७॥

प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर के नामके अंतिम पदमें भी ' मिहिर ' शब्द स्पष्ट है। अतः राजवाडे आदि कुछ विद्वान् उनको शक जातिका मानते हैं। यह मिहिर शब्द आजभी भारतमें अल्प परिवर्तनसे नाम, उपनाम आदि में प्राप्त होता है। सिंधुमें मेहर, महारापुर आदि शहरों के नाम मिलते हैं। मिहिर जातिके लोगोंके कारणही नगरोंपर यह नाम पड़ा है। पंजाब प्रांत और उत्तर भारतमें मिहरे, मिहरोत्रे, (बदला हुआ रूप मलहोत्रे) आदि क्षत्रियों के उपनाम हैं। मिहरोत्रे क्षत्रियों के जैतली सारस्वत पुरोहित हैं[3]। कुछ विद्वान ' महाराष्ट्र ' शब्द में भी महर शब्द का अनुमान करते

---

१. १।२३।४-५-६॥, १।२६।४॥, १।४०।५५॥, १।७५।४॥ १।९४।१६॥. १।४४।१२॥, १.५०।११॥, १।५८।८॥, २।१।६॥. ३।५९।१-५-९॥

2. " Mithra was worshiped by the Iranians in very early times ".

A. P. I. C., Pārt–I,C–VI pp. 82

३ जातिभास्कर—पृ. १९८;

हैं (महर+राष्ट्र)[1]। आज भी महाराष्ट्र में महर या महार नामसे जाति है। यद्यपि आज इनको शूद्रोंमें गिना जाता है, किंतु पहले ये क्षत्रियही होंगे।

पर्श्यन् और संस्कृत में 'ह' और 'स' का परस्परमें परिवर्तन होने के अनेक उदाहरण हैं। अिस नियमानुसार 'मिहिर' शब्दका 'मिसिर' यह रूप सुनिश्चित है। सिन्धी-भाषामें ब्राह्मणों को मिसिरु या मिशिरि कहते हैं। उत्तर भारतमें भी मिसिर, मिसर, और मिश्र यह कनौजिया आदि ब्राह्मणों में उपनाम हैं। संस्कृत नाटकोंमें 'आर्यमिश्राः प्रमाणं' यह वाक्य प्रसिद्ध है। यहाँ मिश्र शब्द सम्मानद्योतक है।

इस प्रकार ब्राह्मणोंसे लेकर शूद्रोंतक 'मित्र' (सूर्य) की उपासना करने के कारण मिश्र, मिहिर, मिसिर, मिंसर, मिश्र, मेहरे, मेहरोत्र, और महर इ. उपनाम और जातियाँ मिलती हैं।[2] अस्तु।

पैशाची प्राकृत के नियमानुसार मग का रूप मक होता है, जिससे मघवान् शब्द का मकवान् रूप बन जाना संभव है। पृथ्वीराज रासोमें ३६ क्षत्रिय वंशोंके वर्णनमें 'मकवान्' का भी

---

१. प्राचीन महाराष्ट्र-पृ. २८ (केतकर)

२. यह बात मैंने विस्तृत रूपसे " अपि मघवा (इन्द्रः) मगः " इस संस्कृत निबंधमें बताअी है। यह निबंध भा. इ सं मं. पूनाके ४२ वें वार्षिक सम्मेलन (शक १८७७) के अवसर पर पढ़ा गया था।

उल्लेख है[१]। सिंधी हिंदुओंमें 'मकवाणी' उपनाम है। सौराष्ट्र के 'झाला मकवाणा' प्रसिद्ध हैं, महाराष्ट्र में भी मकवाने और मकासे उपनाम मिलते हैं। मग जातिके ब्राह्मण सौराष्ट्रमें (भोजक ब्राह्मण) और बिहार में ख्यात हैं। इससे यह स्पष्ट हुआ कि शकोंका और भारतीय आर्योंका परस्पर सांस्कृतिक और जातिगत संबंध बहुत प्राचीन कालसे रहा है। इसलिये भारतीय भाषाओंके साथ उनकी भाषा का संबंध स्पष्ट देखनेमें आता है। पैशाची प्राकृत उनकी बीचकी कड़ी जोड़नेवाली मुख्य भाषा थी। पैशाची प्राकृत का स्थान दरद-देश था। इसके उत्तरमें कम्बोज देश था, जहाँ गल्चा भाषाओंका समूह है। 'गल्दया गिरा' ऋ० ८।१।२०॥ पदोंसे गल्चा भाषाका निर्देश किया गया है। उसका विशेष परिचय पाने के लिये यास्कका 'शवतिर्गतिकर्मा काम्बोजेष्वेव भाष्यते' (निरु० २।१।३।४॥) यह वाक्य बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। आज भी वहाँकी भाषाओंमें 'जाना' इस अर्थ में 'शवति'

१. "रवि ससि जादववंश, कुकुस्थ परमार सदावर।
चाहुवान चालुक्य छंद सिलार आभीयर।
दोय मत मकवान गरुअ गोहिल गोहिलपुत।
चापोत्कट परिहार राव राठोर रोसजुत।
देवरा टांक सैन्धव अनिग योतिक प्रतिहार दधिषट।
कारट्टपाल कोट हुल हरितट गोर कलाप्र मट॥

पृ० रा० सम० १ छ. २७७ रु० १३५

पदसे साम्य रखनेवाले कई धातुओं का प्रयोग देखनेमें आता है। जैसे[1] शिग्नी-भाषामें सुत = गया, सरकोलीमें सेत = जाना, सुइत= गया, सौम = जाऊँगा। जबकी, संग्लीची या इश्काशिमी में शुद= गया। मुंजानी या मूंगीमें शिआ = जाना। मुइदगामें शुई = गया।

सिंधी भाषामें भी उसहणु = जाना और सहड़णु = आना धातुएं हैं। सिंधीमें प्रत्येक धातुका अनुबंध 'णु' होता है। यहाँ उसह-णुमें 'उ' उपसर्ग है और 'णु' अनुबंध। सहड़-णुमें 'सहड' धातु है।

यास्क का बताया हुआ गतिकर्मा 'शवति' धातु शुद्ध इराणी भाषा का है। प्राचीन पर्श्यन् भाषामें 'Siya' धातुका प्रयोग होता था। दारय वहूके बेहिस्तानके शिलालेखमें कितनीबार भूतकालमें अ-शियव, अशियवम् प्रयोग मिलते हैं[2]। पारसी लोगोंके धर्म ग्रंथ अवेस्तामें Šav और Šavaite (शव् और शवंते) धातुओंका जाना अर्थ में प्रयोग हुआ है। आधुनिक पर्श्यन भाषामें उसका 'शुदन्' रूप हो गया है[3] यास्क के मतसे इन सब भाषा-समूहोंका प्रदेश

---

१. लिं० स० इ० भा० १०. पृ० ४६८–४७३. ४७४, ४७६. ५००, ५११, ५२४॥

२. प्राचीन महाराष्ट्र (बेहिस्तान का शिला लेख पृ० २०१ से २३२)

3. G. E, S. *U*. *M*. PP. 33,

' कम्बोज-देश कहलाता था। यह भू-भाग वर्तमान भारत और इरान का सीमा देश होनेसे यहाँ की भाषा पर वैदिक-संस्कृत और प्राचीन ईरानी-भाषा का प्रभाव देखने में आता था। सर जार्ज ग्रियर्सन् ने कहा है कि[1] — They either spoke Sanskrit with an infusion of Iranian words to which they gave Indian inflexions, or else spoke a language Partly Indo Aryan and Partly Iranian ' `

श्री वासुदेवशरण अग्रवालजी कहते हैं कि — ' गंधार, कापिश, बाह्लीक और कंबोज इनचार महाजनपदोंका एक चौगड्डा था। पा०भा०—(पृ. ६१),

अतः संभव है कि उन सबकी भाषाओं का परस्पर में निकट का सम्बन्ध हो। श्री स्ट्रैबो (Strabo) का कहना है कि—" मेद, पारसी, बाह्लीक (बल्ख) और सोग्दी (बोखारा) ये सब लगभग एकही भाषा बोलते थे[2]। "

वे सब कम्बोज के पडोस में होनेसे उनका एक दूँसरे में भाषिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा होगा। सोग्दी (शक)

1.J . R. A. S. 1911 P. 801–2.

2. The medes, Persians, Bactrians, and Sogdians, spoke one and the Same Languge with slight variations.
I. P. E. C. P.P.26

भाषाके कितने शब्द आजभी भारतीय-भाषाओं में मिलते हैं। जैसे--

सोग्दी

हडा = होडा (ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध शब्द)

कूर = कूरु (सिन्धी)

माजआ
माजू } माँजो (उत्तर-सिन्धी)
मुँहिंजो (द. सिन्धी)
माझा (मराठी)

पंज्स = पंच (अवेस्ता, संस्कृत)
पंज (सिन्धी)

पूर = पोर, बालक। (मराठी)

सलि = सालु (सिन्धी)
साल (हिन्दी) }

वीज = विज़ा (सिन्धी) (सं० विद्या)

Saka Studies

कई विद्वानोंका यहभी कहना है कि--' कम्बोज ' शब्दमें ' कै ' और ' अम्बोह ' ये दो पद हैं, जिससे मालूम होता है कि ये कम्बोज ' कै ' घराने के इरानी थे[1]।

यदि विचार कर देखा जाय तो वैदिक-कालमें भारतीय-आर्य और ईरानी-आर्योंमें परस्पर कोइ विशेष भेद नहीं था। केवल

1. G. E. S. *U. M.* PP. 40.

सैद्धांतिक मत-भेद हो जाने के कारण एक-दूसरे में संघर्ष होने से अलग हो गये।

विषयांतर होने पर भी अिस बातको थोड़ा स्पष्ट कर लें।

ऐतिहासिक दृष्टिसे ऋग्वेदका अध्ययन करनेपर यह मालूम होता है कि 'असुर' शब्द कई बार इन्द्र वरुण, सूर्य आदि के विशेषण रूपसे प्रयुक्त हुआ है[1]। उस समय 'असुर' शब्द का अर्थ था असु = प्राण और बलकी रक्षा करनेवाला (असून् = प्राणान् बलं वा रक्षतीति असुरः)। जब इन्द्रानुयायी और वरुणानुयायी आर्योंका आपसमें मनमुटाव हुवा तब असुर शब्द का अर्थ भी धीरे धीरे बदलने लगा (न सुरः = अ-सुरः, अर्थात् जो सुर देव नहीं वह असुर) और उधर असुर वरुणानुयायी आर्यों (इरानियों) ने देवों का अनादर किया। पारसियोंके धर्म ग्रंथ वेन्दीदाद में वर्णन आता है:—

---

१. असुरांप्रचेता) ऋ० १।२४।१४॥ असुरः (इंद्रः) ऋ० १।५४।३॥ १।१७४।१॥, ६।३६।१।, ८।९०।६॥ असुरः (अग्निः) ऋ० २।१।६।, ३।३।४।, ४।२।५।, ५।१५।१।, ७।३०।३॥ असुरः (वरुण) ऋ० २।२७।१०।, ८।२८।७॥ असुरः (मघवा) ऋ० ५।२७।१॥ असुरः (वायुः) ऋ० ५।४२।१॥ असुर (पूषा) ऋ० ५।५१।११ असुरः (मरुत्) ऋ० ५।८३।६॥ असुरः (सूर्यः) ऋ० १।३५।७, ८।१९।२३॥ मित्रा. वरुणौ असुरौ आर्यौ - ऋ० ७।६६।२॥

' पइति– परने इन्द्रम्, पइतिं परने सउरुम्,
पइति परने नाओङ् हइर्थीम् दएउम्,
हच न्मान, हच वीस, हच जन्तु, हच दइ्ऱ्हु '
वेन्दीदाद (वीदएवदात्) फर्., १० ।९॥

श्री मेक्समुलरने उसका अनुवाद इस प्रकार किया है ।

I drive away Indra, I drive away Sauru, I drive away the Daēva Naunghaithya (= नासत्यौ) from this house, from this borough, from this town,from this land. वेन्दी० फर० X P. 139.

परंतु झर-थुष्ट्र-संप्रदायके प्रचलनसे पूर्व उनमें भी ' देव ' शब्द ईश्वर वाचक माना जाता था। परम श्रद्धेय स्वर्गीय जे० एस्० तारापोरवालाने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ' The Divine Songs of zarathushtra ' में कहा है कि – Daēva 1-3 In the Gâthās this word is not used in the bad sense, it aquired later. The word is, used merely for the.' Gods ' of the Pre-zoroastrian religion as well as for their followers and for the ritualistic Priests of the earlier faith. P. 149.

कालांतरमें पारस्परिक वैमनस्यके कारण ऐसे शब्द देखनेमें आते हैं जिनका अर्थ एक जगह उत्तम है तो दूसरी जगह निकृष्ट। उन शब्दोंमें दस्यु, म्लेच्छ और वृषल शब्द मुख्य हैं।

ऋग्वेदमें 'दस्यु' शब्द असुरों के लिये आया है। दस्यु धनवान थे-

ऋ० १।३३।४॥ शम्बर दस्युके सैकड़ों पुर थे ऋ० ६।३१।४॥ दस्यु माया जानते थे। ऋ० ६।१४।३, १०।७३।५॥ दस्युओंके लोहे के किले थे ऋ० २।२०।८॥ इन्द्रने दस्युओंको आर्य नहीं कहा (न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ऋ० १०।४९।३॥)। इन्द्रने दस्युओंको मारकर आर्य वर्णकी स्थापना की। (हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्ण मावत् ऋ० ३।३५।९॥) आर्य और दस्यु भिन्न थे। (विजानीहि आर्यान्ये च दस्यव ऋ० १।५१।८॥ २।११।१८॥) इन्द्रने दस्युओं को जीतकर उनकी खेती आदि धन अपने मित्रोंमें बाँट लिया ऋ० १।१००।१८॥ अन्ध्र, पुंड्र, शबर, पुलिन्द, और मूतिक आदिजातियाँ दस्युओंमें मुख्य थीं और वे विश्वामित्रकी संतान थीं, ऐसा ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन आया है[१]।

किंतु वह दस्यु शब्द उस जमानेमें वरुणोपासक असुर-आर्यों (ईरानियों) का उपाधि-पद था। बेहिस्तानके शिलालेख में दारयवहु अपनेको दह्यु (दस्यु) विश्तास्पका पुत्र कहता है[२]:—

---

१. 'तस्य ह विश्वामित्रस्य एकशतं पुत्रा आसुः। पञ्चाशदेव ज्यायांसा मधुछंदसः, पञ्चाशत्कनीयांसः इति। तेषां मध्ये जेष्ठानां वृतान्तमाह तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे,ताननु व्याजहारा तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एते ऽन्ध्राः पुण्ड्रा शबरा. पुलिन्दा मूतिका इत्युदन्ता बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ऐ० ब्रा० ७।१८

२. प्रा० महा० पृ० २०९.

'अदं दारयवउश् क्षायथिय वझ्रक क्षायथयाय क्षायथियानां क्षायथिय पार्सय क्षायथिय दह्युनां विश्तास्पह्य पुथ्र अर्शामह्या-नपा हखामानीशिय० '। संस्कृत छायानुवादः—

अहं दारयवहुः क्षत्रियः वज्रकः क्षात्रियः क्षत्रियाणां क्षत्रियः पार्से क्षत्रियःदस्यूनां विश्तास्पस्य पुत्रःअर्शामस्य नप्ता हखामनिशिय[1]।

इस वाक्यमें दह्यु, (= दस्यु) शब्द का अर्थ है देश। यह दह्यु शब्द पर्शियन् भाषाके 'दिह' धातुसे बना है—जिसका अर्थ है दिहात = गाँव[1]।

सिंधी भाषामें तीन-चारसौ एकड़ से ऊपर खेतीवाली जमीन को 'देह' कहते हैं। इसमें किसानोंके छोटे छोटे गाँवभी होते हैं। उनको सिन्धी में 'खेट' कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि असुरोपासक प्राचीन इरानी गाँव, नगर बाँधकर रहते थे, इस लिये वे अपनेको दहयु (= दस्यु) कहाते थे। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि वनमें रहना सात्विक है, गाँव में रहना राजस है और द्यूत-

---

1. In Modern Persian, this word 'Dahyu' Survives as 'Dih' and means a 'Village'. From Modern Persian this word has entered in the Vernaculārs of North India in its Plural form 'Dihāt' meaning countryside.

Thus the word Dasyu or Dahyu, Originally Signifying a Particular People inhabiting the Indo-Irānian world became a common noun meaning a country or People in old Irānian.'

Vṛtra - By Buddha Prakash. M. A.

B. O. R. I. 1949. Pp. 124.

स्थान (नगर) में रहना तामस है[1]। कारण कि गाँव आदिमें रहनेसे मानव परमार्थ को छोड़ कर व्यवहारमें अधिक लिप्त रहता है। इसलिये उसको छल, कपट, हिंसा आदि पापकर्म करने पड़ते हैं। यही कारण होगा कि परमार्थवादी देवोंने व्यवहारवादी असुरोंको गाँवों और नगरों में रहने के कारण दस्यु कहा हो। बादमें वह शब्द संस्कृतमें मूल अर्थ को छोड़कर छल, कपट, धोखा आदि करनेवाले लोगोंके लिये व्यवहृत हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि असुरोपासक आर्य गाँव नगर, दुर्ग आदि बांधकर उनमें रहनेसे व्यावहारिक दृष्टिसे सुसंस्कृत थे। मय आदि दानव उन्हींमेंसे ही महान् शिल्पी थे, जिनका वर्णन महाभारतमें मिलता है। परंतु इंद्रानुयायी आर्य परमार्थवादी होनेसे व्यावहारिक कार्योंमें विशेष रुचि न रखनेके कारण उन बातों में अवश्य पिछड़े हुए थे। जिससे उनका अगुवा इन्द्र पुरों को भेदन करने के कारण वेदोंमें ‘ पुरभित् ’ और ‘ पुरन्दर ’ कहलाया[2]।

अब ‘म्लेच्छ’ शब्द लीजिये। भारतीय आर्य साहित्यमें शुद्ध और स्पष्ट न बोलनेवालों के लिये, पतित के लिए तथा भारत से बाहर जितनी जातियाँ रहती थीं उन सबके लिये ‘ म्लेच्छ ’ शब्द व्यवहार

---

१. वने तु सात्विको वासो, ग्रामे राजस उच्यते। तामसं द्यूतसदनं, मन्निकेतं तु निर्गुणम्। श्रीमद्भागवत स्कं. ११. अ २५। श्लो. २५॥

२. ऋ. १. । १०२ । ७॥; ८। १। ७-८॥, ८।६१॥ १०॥ ८।६१;८॥ १०।९९।७॥ आदि।

में आया है[1]। 'म्लेच्छ' शब्द का यह रूप भारतीय-संस्कृत भाषा का है। वास्तवमें वह अपने प्रदेशमें (ग्रीस आदि देशोंमें) 'मोलोक' रूपसे उच्चरित होता था और उस प्रदेशमें वह 'ईश्वर' और 'राजा' वाचक था[2]।

उर्दू-हिन्दी कोषमें[3] 'मलक' का अर्थ देवदूत, फरिश्ता; 'मलिक' का अर्थ बादशाह, महाराज; और 'मालिक' का अर्थ ईश्वर, स्वामी तथा पति दिया है।

---

¹ म्लेच्छ = अव्यक्ते शब्दे।

2. Moloch (Mō' Lōk), n. [L. Fr. Gr. Μολσχ., fr. Heb. Mōlek, cf. Heb. Melek king.]

Bib. A Semitic deity, probably a fire or Sun god, whose worship was accampanied by human sacrifice, esp. of first-born children Moloch is spoken of in the old Testament as " The abomination of the Āmmonities," but is doutless the same God as Melkarth of thePhœnicians, and various similar semitic-deities. The form Moloch is an intentional distoration of later Hebrew writers for Melech signifying " King ". cf. Ball. 1. N. I. D. E. L.

" Moloch-Molech. 'Molech' meaning simpley-king - is a term that can naturally be applied to any "Great" God, and which may equally well designate each of the four deities just mentioned. Rites like those of Molech belonged certainly to El and to Baal, and the name may be an abbreviation of Melkarth, or a title the proper title – of Shamas." – R. A. W. ..pp. 167 – 168.

३ उर्दू हिंदी कोष रामचंद्र वर्मा.

पुराणोंमें मूलक जाति और उनके देशका उल्लेख आया है जो भारतके पश्चिमोत्तरमें (वायव्यकोणमें) था[१]। बादमें वे लोग उतरकर दक्षिण-देशमें आये, जहाँ उनका अश्मक जातिके लोगोंके साथ उल्लेख हुआ है[२]। कहना इतना ही है कि मलक, मलिक और मूलक ये सब एकही मोलोक या मोलेक शब्दके परिवर्तित रूप हैं। भाषाविज्ञान के नियमानुसार 'क' और 'च' परस्पर परिवर्तन शील हैं। इस प्रकार मोलोक और मोलेक का मोलोच और मोलेच रूप होते हैं। बादमें वह संस्कृतमें आकर 'म्लेच्छ' बन गया। सिंधीमें इसका रूप है' 'मलेछु'।

यही स्थिति 'वृषल' शब्द की भी है। प्राचीन यूनानमें वह 'राजा' वाचक शब्द था[३]। लेकिन भारतीय आर्योंने जो कुछ धार्मिक कर्म-क्रियाएँ निर्धारित कीं वे जिन लोगोंमें न देखी गईं या लुप्त हो गईं, मनु आदि स्मृति-ग्रंथोंमें उनको 'वृषल' कहा गया

---

१. माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलकाश्च मुषाः खशाः।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तर-पश्चिमे ॥ १७। ग॰ पु॰ खं. १। अ॰ ५५॥

2. T. A. I. pp. – 84

३. चंद्रगुप्त मौर्य पृ. ७४। प. १॥

है[1]। उनमें पौंड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद और खश ये क्षत्रिय जातियाँ प्रधान थीं।

मनुस्मृतिके उद्धरणसे यह तो स्पष्ट है कि पहले निश्चितही वे सब आर्य-क्षत्रिय जातियाँ थीं। कम्बोज वैदिक-साहित्यमें प्रसिद्ध थे वैदिक अध्यापकों में कम्बोज औपमन्यवका नाम आया है। (सामवेदका वंश ब्राह्मण[2]) 'कम्बोजाल्लुक्' ४।१।१७५॥ पाणिनि मुनिके इस सूत्रपर 'कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं०' दिये गये इस वार्त्तिक के उदाहरणोंमें काशिकाकारने कम्बोज, शक, यवन इन जनपदवाचक शब्दोंका उल्लेख किया है। आगे चलकर महाभाष्यमें शक और यवन इन शब्दोंको छोड़कर अन्य शब्दों के साथ 'कम्बोज का उदाहरण दिया है। इससे यह मालूम होता है कि पाणिनि और वार्तिक-कार के समयतक कम्बोज, शक और यवन क्षत्रिय जातियाँ थीं महाभाष्यकार पतञ्जालिके समयमें कम्बोज तो क्षत्रिय माने जाते थे, शेष शक और यवन शूद्र माने जाने लगे। 'शूद्राणामनिरवसितानाम्' ।२।४।१०॥ इस सूत्रके महाभाष्यमें भी शक और यवनों को शूद्रोंमें रखा गया है।

---

१. शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गतालोके ब्राम्हणादर्शनेन च ॥ ४३
पौड्काश्चौड् द्रविडाः कम्बोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥

म० स्मृ० अ० १०.

2. T. A, I. &. pp. I.

चंद्रगुप्तका युनानियोंसे संबंध इतिहास प्रसिद्ध है। परंतु क्या वह स्वयं प्राचीन आर्य युनानियोंके वंशमें से था ? यह अन्वेषणात्मक विषय है। कारण चंद्रगुप्तका मौर्य वंशमें उत्पन्न होना, यह सिद्ध बात है। बालकन् स्टेट्स् (Balkan States) में आइओनिअन (Ionian, इसका संस्कृत रूप यवन है) समुद्रके पास ग्रीसमें Morea प्रदेश है। मोरेअ और संस्कृत मौर्य मिलते जुलते शब्द हैं। संभव है चाणक्य को इस बातकी असलियत मालूम हो, इसलिये वह चंद्रगुप्त को 'वृषल' (युनानी Basilēus) अर्थात् 'राजन्!' शब्दसे पुकारता होगा। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत दुर्गासप्तशती में भी मौर्यों का असुरोंके साथ उल्लेख हुआ है[१]। उस समय युनान आदि देशोंका भारतसे निकटका संबंध था; अतः परस्पर की संस्कृति, भाषा और वास्तु-विज्ञान आदिका आदान-प्रदान होता रहा; इसमें कोई संदेह नहीं। इन सभीका उदाहरण दिया जाय तो प्रधान विषय छूट जाएगा। अतः हम इसको यहीं छोड़कर अपने प्रस्तुत विषयपर आते हैं कि कोई भी शब्द वस्तुतः, न त्याज्य है एवं न उसका मूलतः घृणित अर्थ है। केवल पारस्परिक वैमनस्यताके कारणही शब्दोंका उत्कर्षाऽपकर्ष होता रहा है। बस, यही न्याय 'पिशाच' शब्दके साथ भी लागू है। पहले तो यह जाति देवयोनिमें गिनी जाने लगी और बादमें वह नीच, घृणित मानी जाने लगी। अस्तु।

---

१. 'कालका दौर्हृदा मौर्याः कालिकेयास्तथाऽसुराः।'
दुर्गासप्तशती अ ८।श्लो० ६॥

हम ऊपर कह आये हैं कि पश्तो और गल्चा भाषाएं एक दूसरे के पड़ोस की हैं। इनके बोलनेवालोंको पिशाच कहा जाता था। सर जार्ज ग्रियर्सन् महोदयने पिशाचोंकी एकता दरद लोगोंसे की है[1]। इतिहासज्ञ ग्रीक विद्वानों ने 'दरद' शब्दका भिन्न-भिन्न रूपसे उल्लेख किया है। स्ट्रैबो (Strabo) इन्हें Derdai = दर्दई, प्लिनी (Pliny) Dardae = दर्दई, डिओनीस (Dionys) Dardanoi = दर्दनोई और टालमी (Ptolemy) Daradrai = दरद्रई इत्यादि नामोंसे स्मरण करते हैं[2]। कोई विद्वान दरद शब्दका मूल पर्शियन Dūed (A beast of prey) में मानते हैं और कोई Darindah (= Freice) में तथा कोई नृ - वंश - विद्या - तत्वज्ञ (Ethnologers) पुराने इरानिओंके Dahyu (A Robber) दह्यु. वैदिक दस्युमें इनकी झलक पाते हैं[3]। महाभारतमें (द्रो० CXXI. 4835–37 and 4846-7) दरद लोगोंको कश्मीरके निकट पहाड़ी जातिका माना गया है। इनके आस - पास कम्बोज, खश, शक यवन, त्रिगर्त, मालव, और चीन जातिके लोग थे (महाभारत - अ० २।२४–२२॥ उद्योग० १८६–३०॥ द्रो०।१०।१८॥ भीष्म-९-३७३॥), विष्णु पुराणमें (विल्सन् अडीशन. अ० २। पृ० १८४) उनको आभीर और काश्मीरके निकट माना है। जब कि

---

१ लि० स० इं० जि० ३। अ० ८।

2. T. A. I., C. X VII pp. 86

3. G. E. S. *U.M.*, pp. 86.

मत्स्य पुराणमें [CXXI, 45-5] दरद-देश का उल्लेख गांधार शिरपुर, उर्ज तथा औरस आदि सिन्धुतटवर्ती देशोंके साथ आया है। व्याकरणके प्रसिद्ध ग्रंथ काशिकामें 'दारदी-सिन्धु' का निर्देश है ही[1]। श्री जयचंद विद्यालंकार दरद लोगोंका शिनाख्त कराते हुए लिखते हैं कि-' कृष्णगंगा (झेलमकी उत्तरी शाखा) की घाटीसे सिन्धुकी घाटी तक दरद लोग रहते हैं, और सिन्धुपार गिल्गित और हुंजा नदियोंकी घाटियाँ भी उन्हीं की हैं' (भा०भू०पृ० १२२.पं. ७) ।

इतने वर्णनसे यह मालूम हुआ कि दरद अर्थात् पिशाच लोग हिमालय की उन उपत्यकाओंमें रहते थे जहाँ से सिन्धुनद मानस-सरोवर से निकलकर प्रकट रूपसे बहता था, जिससे दूरके लोग उस नदको ' दारदी सिन्धुः ' कहने लगे थे।

षड्भाषाचंद्रिका के रचयिता श्री लक्ष्मीधरजी तो पाण्ड्य, केकय, वाह्लिक, सिंह, नेपाल, कुंतल सुधेष्ण, भोज (बोट, पाठभेद) गांधार, हैव, (हेम, पाठभेद) और कन्नोज को पिशाच देश मानते हैं[2]। उनकी भाषाके बारेमें डा० स्टेनकोनो आदि कुछ पाश्चिमात्य विद्वान कहते हैं कि पैशाची उज्जैन के आसपासकी भाषा

---

[1] काशिकावृत्ति - अष्टाध्यायी - ४।३।८३॥

२." पाण्ड्य-केकय-बाल्हीक-सिंह-नेपाल-कुन्तलाः । सुधेष्ण-भोज -गांधार-हैव-कन्नोजनास्तथा ॥ २९॥ एते पिशाच-देशाः स्युः" षड्भाषाचंद्रिका पृ० ४ प २० ॥

थी[1]। श्री वररुचिजी तो पैशाची का निकास शौरसेनी प्राकृत (शूरसेनोंका देश = ब्रज मंडल) से मानते हैं[2]।

वस्तुत: ये सब, पिशाच और उनकी भाषा (पैशाची) के प्रसार के स्थान थे, न कि उत्पत्ति स्थान। डा० ग्रियर्सन् का कहना है कि ये पिशाच लोग अपनी भाषा के साथ साथ भारतके वायव्य कोणसे नीचे उतरकर राजस्थानसे होते हुए कोंकण देशतक फैल गये[3]। वैसे देखा जाय तो भारतकी संपूर्ण आर्य और द्रविड भाषाओंपर पैशाची का प्रभाव है। पैशाची की अपनी एक विशेषता है कि घोष व्यंजन अघोष हो जाते हैं। यदि संस्कृत में कहा जायगा 'दामोदर' तो पैशाचीमें होगा 'तामोतर', संस्कृत 'बालक' का रूप होगा 'पालक'। ठीक इसी प्रकार तामिल-भाषामेंभी संस्कृतके 'तीर्थ' शब्दका रूप होता है 'तीर्त'। कारण वहाँ प्रत्येक वर्ग के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण नहीं होते। प्रथम और पंचम वर्णोंसे ही काम निकाला जाता है।

---

१. भा०भू०पृ० २४६, की टिप्पणी।

२. प्राकृत प्रकाश–परि० १० । सू० १–२ ॥

3. 'While I admit that it is Probable that these Piśachas spread down the Indus into Rājastān and along the Konkan Coast, I maintain that in India from which they spread, was the North-West, and that they may have carried their language with them. This North-West was Proper home'. R. G. Bhandarkar Commemoration 'Home of Pali'. pp.120.

हिमालयसे लेकर सिंधु-सौवीर तककी भाषाओं में एक और विशेषता यह है कि शब्द के अंतमें प्रायः 'उ' - कार जोड़ा जाता है अर्थात् अधिकतर शब्द उकारांत होते हैं[१]। यह वैशिष्ठ्य आज भी सिंधी - भाषा में देखा जाता है। जैसे अचणु (= आना), वञणु (= जाना) खाइणु (= खाना) पिअणु (= पीना) रामु, गोविन्दु, किशिनु आदि।

इस प्रकारके उदाहरण बिहारी सतसई और तुलसीदाके मानस (रामायण) आदि हिन्दी ग्रंथोंमें भी पाये जाते हैं। देखिये सतसईमें - स्यामु, मनु, चितु, सनेहु, सुरेसु, सबु, देहु, आदि (बिहारी रत्नाकर-दो. १, ३, ५,) मानसमें सुभाउ, सनेहु, (पृ. ३४ दोहा ३), नीचु, (पृ. ३६ - दो. ५), । प्रपंचु (पृ. ३७ - चौ. २), आदि। महाराष्ट्र में प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर की गीता की टीका ज्ञानेश्वरीमें भी उकारांत शब्द पाये जाते हैं।

उदाहरणार्थ यहाँ उसकी कुछ ओवीं दी जाती हैं[२] =

'तरि तर्कु तोचि परशु। नीति भेदु अंकुश।
वेदांत महारसु। मोदकु मिरवे ॥ ११ ॥
एकी हातीं दंतु। जो स्वभावता खंडितु।
तो बौधमत संकेतु। वार्तिकांचा ॥ १२ ॥

१. हिमवत्सिन्धु–सौवीरान्ये च देशाः समाश्रिताः।
उकारबहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ॥ ३१॥ भरत-नाट्य-शा० १७॥

२. ज्ञानेश्वरी पृ. ० २।

मग साहजें सत्तर्कवादु । तो पद्मकरु वरदु ।
धर्मप्रतिष्ठा तो सिध्दु । अभय हस्तु ॥ १३ ॥
देखां विवेकवंतु विमलु । तोचि शुंडा दंडुसरलु ।
जेथ परमानंदु केवलु । महासुखाचा ॥ १४ ॥
तरि संवादु तोचि दशनु । समता शुभ्रवर्णु ।
देओ उन्मेखु सूक्ष्मेक्षणु । विघ्न राजु ॥ १५ ॥
ज्ञानेश्वरी । अ. १ ॥

कन्नड भाषामें सद्दु (= सिंधी- सदु - सं.शब्द), ओन्दु (= एक) मेजु (= मेज), हत्तु (= दस) आदि[1] तलगु भाषामें अन्वेषणमु, सूरदासु, प्रसादु, फलमु, (सं - फलम्) आदि उकारांत शब्द प्रयुक्त होते हैं ।[2]

इसप्रकार हम देखते हैं कि हिमालयसे लेकर भारतके पूर्व-पाश्चिम उत्तर-दाक्षिण की सभी आर्य और द्राविड भाषाओंमें ' उ ' कार की छाप है । जो अपभ्रंश की अपनी विशेषता है[3]। यह उकारांत - शब्द-प्रवृत्ति न केवल अपभ्रंश और उससे निकली हुई भाषाओंमें पाई जाती है, लेकिन उससे पहले की प्राकृतमें भी देखी जाती है । देखिये प्राकृत धम्मपद के दो पद[4] :—

१, २. 'देवनागर' (त्रैमासिक हिन्दी) संसदीय हिन्दी परिषद दिल्ली, वर्ष- १ अंक - ४

३. ' स्वस्यत उत् ' ३।४।२॥ षड्भाषाचंद्रिका, अपभ्रंशनिरूपण ।

४. हिं० अ० यो० पृ० १७

‘ उजओ नाम सो मग अभय नमु स दिश ।
रथो अकुथनो नमु घमत्रकोहि सइतो ॥
हिरि तउ अवरमु स्नाति स परिवर न ।
पनहु सरपि ओमि समेदिठिपुरे जवु ॥

यहां चिह्नांकित पद उकारांत हैं । एक ‘ ललित-विस्तर ’ का उदाहरण लीजिये[१] :—

‘ पुरि तुम नरवर सुतु नृपु यदभृ ,
नहु तव अभिमुख इम गिरसवची
दद मम इस महि सनगरनिगमां,
त्याजि तद प्रभु दतु न च मनु क्षुभितो ॥ ”

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंकी उत्पत्ति तथा स्थान

प्रसंगत: यहां प्राकृत भाषाओंकी उत्पत्तिके बारेमें थोड़ा लिखते हैं । दुराग्रह वश चाहे जो कुछ भी कहा जाय, परंतु ‘ प्राकृत ’ और ‘ संस्कृत ’ शब्द स्वयं अपनी असलीयत बता रहे हैं कि कौन पुरातन है और कौन नूतन । प्राकृतका अर्थ है ‘ जो भाषा प्रकृतिसे, निसर्गसे, स्वाभाविक रूपसे जनसमुदाय द्वारा सरलतासे बोली

१. ‘ ललित–विस्तर ’ हिं. अ. यो. पृ. १८

जाती है'; और संस्कृत का अर्थ है 'जो व्याकरणके नियमोपनियमों द्वारा काँट छाँट कर संस्कार करके बनाई गई है'।

पतंजलि मुनि व्याकरणके अध्ययन का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि 'एकबार देवाऽसुर. संग्राम में 'हेलयो हेलयो' कहते हुए असुर भाग खड़े हुए'[1]।

(असीरियाकी नारियाँ रोने-पीटने के समय 'अइलूनु - अइलूनु' कहकर चिल्लाती थीं[2]।) इसबातको अधिक स्पष्ट करते हुये व्याकरणके महाभाष्यमें एक दूसरा भी उदाहरण दिया है:—

'एकस्यैव शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा – गौरित्यस्य शब्दस्य गावी (सिन्धी-गाबी); गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः॥'

(पा. म. प्रथमाह्निके)

संस्कृतके वैयाकरण इसको भाषा का म्लेच्छन कहते हैं। अतः उनकी दृष्टिमें ये अव्यक्त, अस्पष्ट शब्द हैं। पाणिनि-धातु पाठमें 'म्लेच्छ = अव्यक्ते शब्दे' इस प्रकार कहा गया है। बस इस उच्छृंखलता का नियमन करना ही व्याकरण का प्रयोजन है।

---

१. तेऽसुरा "हेलयो, हेलयो" इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः। तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। (पा. म. भा. आ. १)

२. प्रा. आ. और प्र. इ. श्री. जयशंकर प्रसाद (को. स्मा. सं. काशी पृ० ११०-पं० २०)

इससे यह लाभ तो अवश्य हुआ कि भाषाको स्थिरता प्राप्त हो गई। आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व जो साहित्य, संस्कृत भाषामें लिखा गया है, और सहस्रों वर्ष बादमें भी जो कुछ लिखा जायगा उसको सभी अबाध रूपसे पढ़ते और सरलतास समझते आय हैं और समझते रहेंगे ! इस प्रकार संस्कृत भाषा सोनेके समान निखर पड़ी। वैज्ञानिक-कंकरीटसे बांधी गई इसकी नींव ,तथा अतुलनीय कोषको देखकर ही विद्वानोंने इसको देव-वाणी की उपमा दी। और यह भाषा महान आदरकी दृष्टिसे देखी जाने लगी। परंतु जैसे जैसे इसकी महिमा बढ़ती गई वैसे वैसे साधारण जनतासे भी दूर होती गई, एवं यह केवल विद्वानोंकी भाषा रह गई। अतः जनतासे संपर्क कम होनेके कारण यह 'मृत प्रायः' बन गई। परंतु यह बात प्राकृत भाषाओं में न रही। जिस प्रकार नदी में बाढ़ आती है और वह बांधको तोड़ फोड़ कर बहा देती है उस प्रकार भाषा का प्रवाह भी व्याकरणके नियमोंकी परवाह न कर आगे बढ़ता जाता है। जब जब भिन्न-भाषा-भाषी आक्रमणकारी तथा आक्रान्त लोगोंका परस्परमें मेलजोल होता है, तब वे एक दूसरे के शब्दों को ग्रहण कर मुखसुखार्थ अपने ढंगसे उनका उच्चारण करते हैं। इसी प्रकार काम चलाने के लिये कई विभिन्न भाषाओंके शब्दोंका आपसमें आदानप्रदान होता है और धीरे - धीरे भाषा का रूप बदल जाने पर अन्य भाषाकी उत्पत्ति होती है। इसका जीवित उदाहरण है 'उर्दू-भाषा' हम इसको तत्कालीन व्रज और अवधी का अपभ्रंश कह सकते हैं। साधारण जनता 'अपभ्रंश' का अर्थ भले ही 'बिगाड़' समझ-

लेकिन वास्तवमें यह भाषाका विकास है, प्रगति है । भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह प्रवाह अनंत कालसे चलता आ रहा है, और चलता रहेगा । इसको कोई रोक नहीं सकता । आज की सिंधी भाषा, जिसकी उत्पत्ति पैशाची के व्राचड़ अपभ्रंशसे मानी गई है, उससे वह कोसों दूर आगे बढ़ गई है । इसमें कई विभिन्न रूप मिलेंगे, जो पैशाची और व्राचड़में न भी हों । भारत विभाजन के बाद सिंधु में रहे हुए सिंधी-मुसलमान और भारतमें बिखर गये हुए सिंधी हिन्दुओंकी सिंधी भाषा क्या अन्य प्रान्तीय भाषाओंके संपर्क से अपनेको अछूता रख सकेगी ? अस्तु ।

जिस समय प्राकृत भाषाओंका संस्कार किया जा रहा था, उस समय प्राकृत और संस्कृत की कडी जोड़नेवाली 'छन्दस्' (वैदिक) भाषा थी । जिसमें प्राकृत और संस्कृत दोनों ही रूप मिलते हैं । इसलिये पाणिनि मुनिने 'बहुलं छन्दसि'[1] और 'व्यत्ययो बहुलं' ३।१।८५॥ आदि सूत्र बनाकर उसकी स्वतंत्रता को हाथ नहीं लगाया । यही कारण है कि वैदिक भाषा में प्राकृत भाषाओं की झलक स्पष्ट देखने में आती है । यहाँ हम संक्षिप्त रूपसे प्राकृत और वैदिक भाषा का साम्य दिखाने का प्रयत्न करते हैं ।

---

१ पा. सू.—२।४।३९॥. २।४।७३॥, २।४।७६॥. ३।२।८८॥. ५।२।१२२॥, ६।१।३४॥. ७।१।८॥. ७।१।१०॥. ७।१।१०३॥ ७।३।९७॥, ७।४।७८॥

(१) प्राकृत भाषामें व्यंजनांत शब्द नहीं हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्यमेंभी कहीं२ संस्कृत व्यंजनांत शब्दोंका अव्यंजनांत रूप देखनेमें आता है। जैसे 'पश्चा' (पश्चात् के बदले), अथ० १०।४। ११॥, 'युष्मा' (युष्मान् के बदले) ऋ० १।१३।१॥, उच्चैस् का उच्चा. तै० सं० २।३।१४॥, 'नीचस्' का 'नीचा' तै० सं० १।२।१४॥, तावत् का 'ताव', स्यात् का 'सिया', कर्मन् का 'कम्म' आदि।

(२) जिस प्रकार प्राकृतमें संयुक्त व्यंजनोंमें भी स्वर मिलाकर उच्चार किया जाता है, जैसे वर्षका वरिस, चिकित्साका चिकिआ, श्लाघा का सराहा, स्नेहका सणेहो आदि, इस प्रकार वेदोंमें भी मिलता है - जैसे तन्वः का तनुवः (तै० आ० ७।२२१॥), स्वर्ग का सुवर्ग (तै० सं० ४।२।३॥), स्वः का सुवः (तै० आ० ७।११॥), जन्मका जनिम (ऋ० २।३५।६॥), आदि।

(३) प्राकृतके समान कहीं२ वेदोंमें भी प्र० ए० व० का रूप 'ओ' मिलता है। जैसे -सोचित्' ऋ० १।१९१।१०॥

(४) प्राकृतके समान वेदोंमें अकारांत शब्दोंके तृ०ब०व०का रूप 'भिः' से मिलता है। जैसे देवेभिः ऋ० १।१।५॥, ज्येष्ठेभिः ऋ १।१६७।२॥, आदि।

(५) वैदिक साहित्यमें जिस प्रकार सुप् आदिका व्यत्यय होता है उस प्रकार प्राकृत भाषाओंमें भी देखा जाता है। 'व्यत्ययो बहुलं' ३।१।८५॥ इस सूत्रपर परमादरणीय श्री भाष्यकार लिखते हैं कि 'योगविभागः कर्तव्यः' छन्दसि विषये सर्वे विधयो भवन्ति। सुपां

व्यत्ययः। तिङां व्यत्ययः। वर्णव्यत्ययः। लिंगव्यत्ययः। पुरुषव्यत्ययः। कालव्यत्ययः। आत्मनेपदव्यत्ययः।परस्मैदव्यत्ययः। इति।

[अ] सुपां व्यत्ययः–'दाक्षिणायाः' दाक्षिणस्याम् इति प्राप्ते। प्राकृतमेंभी 'तेलं पिवित्वा' होना चाहिये परंतु 'तेलस्स पिवित्वा' हुआ है। 'तं पटिसुत्वा' की जगह 'तस्स पटिसुत्वा' हुआ है।

[आ] तिङां व्यत्ययः–'चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति'। यहाँ 'तक्षति' के स्थानपर 'तक्षन्ति' होना चाहिये था। प्राकृतमें 'अत्थि इमास्मि काये केसा लोमा नखा' आदि। यहाँ 'अत्थि' के बदले 'सन्ति' होना चाहिए था।

[इ] वर्ण - व्यत्ययः–प्राकृतमें भी बुद्धेभिः (= बुद्धेहि), दुक्कुट (दुक्कुतं), ञाणं (= ञानं), पलिघो (= परिघो), आदि रूप मिलते हैं।

[इ] काल व्यत्ययः–'श्वः सोमेन यक्षमाणेन,' 'यष्टता' इति प्राप्त। प्राकृतमें भी 'पुरे अधम्मो दिप्पति' यहाँ भूत काल होना चाहिये। 'अनेक जाति संसारं संधाविस्सं', यहाँ भी भूतकालकी जगह भविष्यकाल हुआ है। 'अग्गिवेलं नमस्सिस्सति', यहाँ वर्तमानके बदले भविष्यकाल हुआ है। पाणिनिने भी कहा है - 'छन्दसि लिङ् लुङ् लिट :' ३।४।६।। धात्वर्थानां संबंध सर्वकालेषु एते वा स्यु :। देवो देवेभि आगमत् (आगच्छतु) अवममार (म्रियते)। इसप्रकार और भी अनेक व्यत्यय वैदिक साहित्यमें मिलते हैं। जिसका भगवान् पाणिनिने बहुत कुछ वर्णन किया है। अस्तु।

यहाँ हम सिंधीं-भाषा के विषय में लिख रहे हैं। अत: सिंधी और वैदिक-भाषामें परस्पर परिचायक कुछ उदाहरण नीचे देंगे :—

सिंधी भाषा का वैदिक भाषासे संबंध:—

१—स्वर और संगीत के साथ शब्दका उच्चार करना यह एक वैदिक भाषाका लक्षण[1] है। यद्यपि संपूर्ण सिंधी-भाषा स्वरान्त्य है, फिरभी कहीं कहीं वह स्वर मंद पड़ जाता है। परंतु उत्तर-सिंधुकी भाषामें स्वरका विशेष महत्व है वहाँ वह बड़ी सुंदर लचक के साथ उच्चारित होता है। जहाँ दाक्षिण-सिंधुमें शब्दका अंतिम स्वर संवृत्त हो जाता है वहाँ वह उत्तर-सिंधु में विवृत्त बन जाता है[2]। यह बात नीचे के कोष्टकसे स्पष्ट मालूम होगी।

दाक्षिण सिंधु	उत्तर सिंधु
अचु	अचु .... उ

1. In the oldest form of Indo - Aryans Preserved in the Rig and other Vedas and in the Brāhmanas, pitch or musical accent was the Predominant. '

O. D. B. L., pp. 275–76.

2. The Northern or Sirāiki (Sireli) dialect has remained far more Original and has Preserved the Furity of Pronunciation with more tenaciousness than the Southern one. '

'Grammar of Sindhi language
Introduction pp. II
Dr. Turmpp.

खाउ॒ — खाउ....उ

उथु॒ — उथु....उ

वेहु॒ — वेहु....उ

अब एक-दो वाक्योंके उदाहरण भी लीजिये :—

यदि द. सिं. वाले कहेंगे:—' माऊ ! हिते वेहु॒ ',

तो उ. सिं. वाले कहेंगे, 'भायरा ! हितिड़े वेहु....उ नी ँ ....ईं ..

(भाई यहाँ बैठो)

द. सिं. की माता अपने लड़केसे कहेगी :—

' पुट । छोथो रुई, अचु त हँजमें खणाइँ ', तो उ. सिं. की माता अतिकोमल और करुण-स्वरमें कहेगी :—

' पुटरा ! छाजे करे पियो रुएँ..एँ, मातो आउ त हँजमें खणाइँ ....इं नीं....ई '। (पुत्र क्यों रोते हो आओ तो गोदमें लूँ)

यह जो तान, स्वर, माधुर्य, उ० सिं. की भाषा में देखने में आता है, उससे हम कह सकते हैं कि वहाँ की सिंधी भाषापर वैदिक भाषाका स्पष्ट प्रभाव है।

२. कई वैदिक शब्द ऐसे हैं जो वर्तमान संस्कृत—साहित्य (लौकिक-संस्कृत) में प्रयुक्त नहीं होते, परंतु सिंधीमें स्वल्प परिवर्तनसे देखनेमें आते हैं। यह बात नीचे के कोष्ठकसे स्पष्ट होगी।

वैदिक-शब्द	सिंधी-शब्द	लौकिक-संस्कृत
'जूर्य' ऋ० ४।२।७॥	झूरु (अति वृद्ध वा पुराना)	जीर्ण
'वारा:' ऋ (दोधवीतिवारान्) ऋ० २।४।४॥	वार (बाल, केश)	केश
'भल:' (भलाननस:) ऋ० ७।१८।७॥	भलो, चंङोभलो, (अच्छा)	
'भल' इति भद्रवाचीति सायण: ।		
गूळ्हम् - ऋ० २।११।१५॥	गूळ्हो	गूढम्
'जूर्न' जूर्नवस्त्रै: ऋ. २।२६।५॥	झूनो	जीर्ण

३. ऋग्वेदमें 'ळ' वर्ण है जो लौकिक-संस्कृतमें प्रयुक्त नहीं होता। किन्तु पालि (मागधी) तथा आधुनिक मराठी, गुजराती, और सिंधी भाषामें वह मिलता है।

यद्यपि आजतक सिंधी-भाषाकी लिपि विदेशी होनेसे, अर्थात उसका अरबी रूप होनेसे उपरोक्त वर्णके स्वरूपका ज्ञान ठीक तरहसे नहीं किया जा सकता है फिरभी ध्वनिसे उसका यथार्थ बोध हो जाता है। जैसे 'गूळ्हो' (गूढं), मूळ्हो (मूढ:), पळ्हणु (पढ़ना), चळ्हणु (चढ़ना), आदि ।

४. सिंधी-भाषामें एक 'अणासो' शब्द व्यवहृत होता है, जिसका भावार्थ है निर्लज्ज, बेशर्म। यदि इस शब्दका हम विश्लेषण करने बैठें, तो इसका रूप होगा अ+णासो (अ+नास:) अर्थात जिसकी नाक नहीं है। व्यवहारसें भी कहा जाता है कि - 'अमुक

आदमी को तो नाक भी नहीं है' अर्थात् लज्जाहीन है। ठीक इसी अर्थमें ऋग्वेदमेंभी अनासः शब्दका प्रयोग हुआ है[1]।

मागधी, शौरसेनी और पैशाची आदि नामोंसे ही इन भाषाओंके स्थानका बोध होता है, अतः उनका वर्णन न कर अपभ्रंश पर लिखते हैं।

अपभ्रंश

संस्कृत-साहित्यमें प्रायः सभी प्राकृत-भाषाओंका मूल संस्कृत-भाषा मानी गयी है। इस प्रकार प्रथम स्थान संस्कृतको प्राप्त है, दूसरा स्थान प्राकृत-भाषाओंको और तीसरा स्थान अपभ्रंशको, यदि विचार कर देखा जाय तो प्रथम स्थान अपभ्रंश को ही मिलना चाहिये। कारण अपभ्रंशको देशी-भाषा और ग्रामीण-भाषाभी कहा गया है[2]। साधारण जनता स्वभावतया जिस भाषामें बोलती है, जो व्याकरणके नियमोंके बंधनोंसे मुक्त है वही देशी भाषा है[3]। धीरे-धीरे उसमें शब्दोंके व्युत्पत्ति आदिका चिंतन आरंभ होता है, वह उसकी

---

१. ऋ० ५।२९।१०॥

२. " लोकेषु यत्स्यादपभ्रष्टसंज्ञं ज्ञेय हि तद्देशविदोऽधिकारम्।"—
विष्णुधर्मोत्तर पु० ३।७॥

'षष्ठोऽत्रभूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः"।
रुद्रटकृत-काव्यालंकार २।१२।

" देसी-भासा उभयतडुज्जल,कविदुक्कर-घण-सद्द-सिलायल"
रामायण १॥

छुडु होंति सुहासियवयणाइं गामेल्ल-भासपरिहरणाइं" ॥ रामा०

३. " लक्षणैरसिद्धं तद्देशप्रसिद्धम्॥" प्रा०स०अ० १।सू०३॥

मध्यम अवस्था है, जिसको 'प्राकृत' कहा जाता है। उसमें भी जब प्रकृति, प्रत्यय आदिकी पूरी छान-बीनकर व्याकरणके नियमोंद्वारा उसका संस्कार किया जाता है तब उसको 'संस्कृत' कहते हैं।

यह समान्य नियम है कि प्रथम भाषा होती है फिर उसका व्याकरण बनता है। अतः व्याकरणके नियमोंसे मुक्त देशी-भाषाका स्थान प्रथम है। देश विशेषसे उसके कई भेद हैं[1]।

उन सबमें आभीर-अपभ्रंशको दण्डी कविने प्रथम स्थान दिया है[2]। वे कौन थे और उनका स्थान कहाँ था यह जानना आवश्यक है।

सिंधुके लाड़ाई, आभीर और यादव एक ही थेः-

हैदराबाद सिंधु के बदीन तालुका और कराची जिलेको 'लाड' कहा जाता है। यहाँ के रहवासी हिन्दू 'लाड़ाओ' कहलाते हैं।

---

१. 'व्राचडो-लाट-वैदर्भा उपनागर-नागरो।
बार्बरा-ऽवन्त्य-पांचाल-टाक्क-मालव-केकयाः।
गौडो-ड्रावेव पाश्चात्य-पाण्ड्य-कौतल-सैंहलाः।
कालिंग-प्राच्य कार्णाट-कांच्य-द्राविड गौर्जराः।
आभीरो-मध्यदेशीयः सुक्ष्मभेदा व्यवस्थिताः।'
प्राकृत-सर्वस्व (मार्कंण्डेयकृत) अं० १॥

२. अभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृतः ॥ काव्यादर्श अ०-१॥ श्लो० १६।

भूगोल-वेत्ता विद्वान सिंधुको तीन भागोंमें बाँटते हैं। १-सिरो (सिंधुका उत्तर भाग, सिरोभाग), २-विचोलो (बीचका, मध्य-भाग) ३ लाड़ (लटका हुआ, नीचेका भाग)। कुछ विद्वानोंका कहना है कि जिस प्रकार ईजिप्त को नील नदी के आधारपर उत्तर, मध्य और दक्षिण भागोंमें बाँटा गया है, उसी प्रकार सिंधु-नदीके आधारपर सिंधु देशको उत्तर = सिरो, मध्य=विचोलो और दक्षिण=लाड़ भागोंमें बाँटा गया है[1]। श्री ए. बर्नस कहते हैं कि 'सिर' और 'लाड़' ये दोनों शब्द बलोची-भाषाके हैं, जिनका अर्थ है 'उत्तर' और 'दक्षिण'। परंतु बलोची भाषापर पर्श्यन् भाषाका स्पष्ट प्रभाव है तथा पर्श्यन् का मूल मदी-भाषा है जिसमें मीडिआ देशके उत्तर भाग को Sauromatæ कहा गया है। वहाँ काकेशस्के उत्तरमें Siracene प्रांत और Siraceni जाति का भी उल्लेख मिलता है[2]। अस्तु।

1-2. There is another curious coincidence worthy of notice. It is well known, that from below the junction of the Panjab rivers down to Sihwan, the Indus takes the name, of Sar, Sir, or Sira; and from below Haiderabad to the Sea that of Lar. It is more correct, but unusual to add an intermediate division, called wicholo, "Central", representing the district lying immediately around Haiderabad, just as on the Nile, the Wustani "Midlands" of the Arabs represented, the tract between upper and lower Egypt. Sir A. Burnes says that Sir and Lar are two Buluch words for 'North' and 'South'. But the first is a slavanic word also,

भौगोलिक दृष्टिसे सिंधु देशके ये विभाग ठीक भी हों, परंतु 'लाड़' शब्दका, लटका हुआ या दक्षिण-भाग, यह अर्थ बताना ही केवल प्रयोजन नहीं, अपितु वह किसी जाति विशेष का भी निर्देश करता है, जिसको प्राचीन इतिहासमें 'लाड़क' कहा गया है। वे लाड़क जातिके लोग सिंधुके उत्तर-भागमें आकर बसे और वहाँ अपने नामसे 'लाड़काणो' शहर बसाया। 'लाड़काणो' में 'लाड़क', यह जाति वाचक शब्द है और 'अणो' संबंधद्योतक प्रत्यय है, (लाड़क+अणो), जैसे सिंधीमें 'अबाणा' (अबा=पिता, अणो=का) पिताका, 'दादाणो' (दादा=पितामह, अणो=का) दादाका, आदि शब्द हैं। लाड़काणोके संबंधमें सिंधीमें प्रसिद्ध कहावत है कि

'हो कोम लाड़कनिजो हितिड़े कदोमु थाणो।
पिओ नाउँ पोअि हिनते लाड़कताँ लाड़काणो॥'

---

which Gatterer and Niebuhr tell us is retained in sauromalœ Signifying, 'northern' Meds. There were also a province of siracene and a tribe of Siraceni and other similar names north of Caucausus. The Slavonic and Persian show a great similarity. Thus spaco signifies "a bitch" in both, and the same with the first syllable of sauromatæ or sarmatæ. Hence Sar for the 'Northern Indus' was more probably a remnant of Median than Buluch emigation, though the Persian element could be accounted for, even the latter supposition, seeing original Iranian connection.

"Historians of Sindh" Vol III, Pp. 130.
By Elliot & Dowson. second Reprint 1956 Calcutta.

अर्थात्--प्राचीन कालमें यहाँ लाड़क जातिके लोगों का निवास था, इसलिये इस स्थान का नाम 'लाड़काणो' पड़ा[1]।

लाड़काणोके पास मुअनिजो दड़ो तथा पंजाबमें हड़प्पाके उत्खननोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मयसोपोटामिया से लेकर सप्त-सिंधु तक उस समयके लोगोंका परस्परमें व्यापारिक तथा सांस्कृतिक आदान प्रदान होता रहा[2]। मुअनिजो दड़ो तो नष्ट हो गया परंतु उसके दामनमें बसा हुआ लाड़काणो शहर आज भी उन्नत-मस्तक खड़ा है जो मयसोपोटामिया की Tigris= तिग्रिस (=तुग्र्या - ऋग्वेद १।३३।१५) नदीके तटपर बसे हुए लाड़क लोगोंके शहरकी आज भी याद दिलाता है[3]। पर्श्यन गल्फमें लारिस्तान नामसे प्रांतभी है! वहीं एक लारक नामका द्वीप है। साईप्रस (Cyprus) में लार्नक (Larnaca or Larnaka) नामका शहर है। लाड़िक (Ladik), लाड़िकिये, लटिकिए (Ladi-

---

१. देखिये मेरा निबंध – 'प्रागैतिहासिक लाट देश' (संवत् २००६ पृ० ४९) नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी वर्ष ५४ अंक १.

२. देखिय मेरा निबंध -- 'सिंधुकी मूल संस्कृति और उसका विकास' 'सम्मेलनपत्रिका' हिं. सा सम्मेलन प्रयाग भा० ३४ सं. १०-२२ श्रावण आश्विन-संवत्-२००४.

3. 'The third royal town was Larak on the former course of tigris (to-day the Shatt-el-Hai)

Mesopotamia, pp, 21.

kiyeh Lātakia) ये एशियाई टर्कीमें शहर हैं[1]। ई. सन्से २०९५ (2095 B. C.) पूर्वको यह प्राचीन जाति बलोचिस्तानके मार्गसे सिंधुमें पहुँची, या सिंधुसे वहाँ पहुँची, कुछ निश्चयसे कहा नहीं जाता ! । लाड़कका ही लघुरूप है -' लाड़ ' जिससे संस्कृत ' लाट ' शब्द बना है। यह बात मैं ने 'प्रागैतिहासिक लाट-देश ' नामक निबंधमें बताई है। मुसलमानों के शासन-कालमें समुद्रके पश्चिम-तटको लाड़-समुद्र कहा जाता था। श्री मसउदी कहते हैं कि वहाँकी भाषा 'लाड़ी' कही जाती थी[2]। परंतु हम आज भी समुद्र तट पर सिंधुके दक्षिण भाग अर्थात् कराची जिले को ' लाड़ ' और उसकी भाषाको ' लाड़ी ' कहते हैं। खंबात और नर्मदाके बीच के भू-भाग के लिये लाड़ नामकी प्रसिद्धि बाद की है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि वहाँ की भाषाको न पहले ' लाड़ी ' कहा जाता था और न आज ही। अतः वास्तविक लाड़ या लाट देश तो सिंधुमें ही है। अस्तु।

---

1. Encyclopœdia Britannica Vol XXX IV
Map No. 40, E 7. 38. F-5. 38, 92-38 F. 5

2. The name Lārdesa probably survived the Hindu Period, for the sea to the west of that coast was in early Muhammadan time Called the sea of Lār and the language spokan on its shores was called by Masudi, Lāri.

T. A. I. pp. 351

लाड्क का लाड्क्र, लाकर और अनुनासिक लांकर रूप भी हो सकते हैं। बलोचिस्तानमें मकरानके समुद्रतटपर लंगर या लंकर नामके लोगोंका होना मिलता है। ईसवी की सप्तम शताब्दीमें आये हुए चीनी यात्री उसको Lang-Kie (Ka) -Lo —लंग — की (क) - लो कहते हैं। उसका संस्कृत रूप लंगर या लंकर है[1]। ये लंगरही महाभारतके वंग (महा० सभा० ४७।१०) हैं, ऐसा डॉ. श्री. मोतोचंद का कहना है[2]। भांडारकर प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर, पूना द्वारा महाभारतके संशोधित संस्करणमें 'वंगा:' की जगह (D पाठभेदमें) 'आभीरा:' ऐसा पाठ दिया है। मेरे विचारसे यह पाठ भी सुसंगत है। क्यों कि आभीरोंकी वृत्ति गो-धन पर थी। बलोचिस्तान गो-धन के कारण प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। यह बात मैंने अपने निबंध 'सिन्धुकी मूल संस्कृति और उसका विकास' में विस्तृत रूपसे बताई है। बलोचिस्तानकी पर्वतमालाके एक शिखरको आज भी 'खीर-थड़' कहते हैं। इसका संस्कृत रूप 'क्षीर-स्थल' है। स्कंद पुराणके हिंगुलाद्रि-खंडमें इसे 'क्षीर-क्षेत्र' कहा गया है। अत: वहाँ के बाशिंदोंको आभीर कहना ठीक ही होगा। उन लोगोंने युधिष्ठिरके यज्ञमें अजा, अवि, गो, हिरण्य, फलज-मधु तथा विविध कंबल उपहारमें लाये थे (महा० सभा० अ. ४७ श्लो० ११)। गो-वृत्तिके

1-2. 'In the Seventh Century according to Yuanchang the Lang-Kie (Ka) Lo, whose Sanskrit form Langar has been found by julien and Lankar by Watlers lived on the Makrān Coast.'

G. E. S. M. U. pp. 54.

कारण वे आभीर यादव ही होने चाहिये। स्व. श्री. काशीप्रसाद जायसवालजी लाडक, आभीर और यादवों को एकही मानते हैं।[1]

यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि अशोक के शिला-लेखोंमें 'लाडक' शब्दके भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं। जैसे गिरि-नारके शिलालेखमें 'रिस्टिक', मानसेहरामें 'रट्रक', शाहबाज गढ़ीमें 'रस्तिकन' और धौलीमें 'लठिक'[2]। इनका ही बदला हुआ रूप गुजरात और राजस्थानके 'राठी' और 'राठोर' जातिवाचक शब्दों में मिलता है। संस्कृतमें इनको राष्ट्रिक और राष्ट्रकूट कहा जाता है। जब वे महाप्रबल हुए तब उनको महाराष्ट्रिक, महारिस्टिक, महारट्ठिक और महालट्ठिक कहा जाने लगा। 'महाराष्ट्र' यह प्रान्तका नाम इनके ही कारण पड़ा है, ऐसा स्व. श्री रामकृष्ण गोपाल भांडारकरजीका कहना है।[3] हम अभी ऊपर कह आये हैं कि लाडक ही आभीर हैं जो यादवोंके सात्यकी शाखा में से हैं। वे धीरे-धीरे लाड़काना से उत्तर पंजाबकी ओर, दक्षिणमें कच्छ काठ्या-वाड़से होते हुए कोंकण तक और पूर्व में उत्तर-प्रदेश दिल्ली आदिसे होते हुए नेपालतक फैल गये, ऐसा महाभारत, पुराणग्रंथ और शिलालेखोंसे सिद्ध होता है।

---

1. In the time of Periplus (c. 80 A. D.) the very area called by Ptolemy 'Lārikē' was called 'Abiria'. It seems that the Ābhiras of Gujrat were the Rāstrikas of Ashok and the Yādavās of Mahābharata.' (Hindu Polity pp. 141)

२. अशोकके धर्मलेख, जनार्दन भट्ट एम्. ए. पृ० १५५.

3. 'The Rāshtrakutas are represented to have belonged

महाभारतके युद्धमें वे आभीर दुर्योधनके पक्षमें होकर पाण्डवोंसे लड़े थे। द्रोणाचार्यने अपने सुपर्णव्यूहमें उन दुर्धर्ष लोगोंको व्यूहके ग्रीवा-स्थानमें रखा था। (महा.द्रो.अ. २०, श्लोक ६० नीलकण्ठी)। श्रीकृष्णकी इह-लीला संवरणके बाद जब अर्जुन द्वारकासे यादव पत्नि-योंको साथ लेकर हस्तिनापुर जाते हुए पंजाबसे गुजरा तब उन आभीरों ने केवल लकड़ीकी मारसे उसको लूट लिया[1]। वनवासमें गये हुए पाण्डवोंको आश्वासन देकर लौटते समय श्रीकृष्ण कुरु-जांगल, पांचाल, शूरसेन, यामुन (यमुना तटवासी लोगोंका देश), ब्रह्मावर्त,

---

to the race of Yadu. According to the Wardha plates they were members of the Sātyaki branch of the race, and were the direct descendants of a prince of the name of Ratta. He had a son of the name of Rāshtrakūta after whom the family was called. These are clearly imaginary persons, and as remarked before the Rāshtrakūta family was in all likelihood the main branch of the race of Ksatriyas named Rattas who gave their name to the country of Mahārāshtra and were found in it even in the times of Ashoka the Maurya'. The Early History of the Deccan. By Sir R. G. Bhandarkar section XI. pp. 85-9-9- Poona 1927.

१. ' पार्थः पंचनदे देशे बहुधान्यसमन्विते। चकार वासं XXX १३॥ ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीराः मंत्रयामासु समेत्यात्यन्त दुर्मदाः॥ १४॥ अयमेकाऽर्जु नोधन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानति क्रम्य धिगेतद्भवतां बलम्॥ १५॥ हत्वा गर्वसमारूढो भीष्म--द्रोण--जय द्रथान्। कर्णादींश्च; न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्॥ १६॥ आभीरै र-नुसृत्याजौ हृता पंचनदालयैः। धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य पूरणे॥ १७॥. महा० मौस० अ० ८॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, सौवीर और आभीरोंको पारकर आनर्त्त (द्वारका) में पहुँचे थे (भागवत स्कं. १, अ. १०, श्लो. ३४-३५)। यहाँ सौवीरों के बाद आभीरोंका उल्लेख है। वर्त्तमान सिंधु-प्रांत ही पौराणिक कालमें सौवीर कहलाता था, यह बात निर्णीत है[1]। अतः सिंधु का पूर्वतट थड़पारकर और कच्छ ही आभीरोंका देश होना चाहिये,[2]। कारण आभीरोंके बाद ही आनर्त्त (काठ्यावाड) का निर्देश है। यहाँ वैदिक कालमें सरस्वती समुद्रमें आकर गिरती थी, इसलिये नकुल के दिग्विजय वर्णनमें आभीरोंको सरस्वती-तटवासीभी कहा है[3]। श्री वराहमिहिर कहते हैं कि जहाँ सरस्वती लुप्त हो गई वहाँ आभीर रहते थे[4]! महाभारतमें कईबार आभीरोंका शूद्रोंके साथ उल्लेख हुआ है[5]। वे शूद्र चतुर्थ वर्णके न

---

१. भारतभूमि और उसके निवासी -- जयचंद विद्यालंकार पृ. ६४ भारतवर्षका इतिहास -- भगवद्दत्त बी. ए. पृ. १५९

2. Abi ria (skt. Ābhira). Abiria being identified with the region, east of the Indus, above the insular Portion formed by its bifurcation.

T. A. I. pp. 80.

३ शूद्राऽऽभीरगणाश्चैव येचाश्रित्य सरस्वतीम् ।। म० स० ३२।१०।।

४. ' आनर्ता, ऽर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्रा, ऽऽ भिर, शूद्र रैवतकाः । नष्टा यस्मिन् देशे सरस्वती, पश्चिमोदेशः ।। बृ० सं. अ, १६ । ३१ ।।

५ शूद्रा ऽऽ भीरगणा० महा० सभा० अ० ३२ श्लो० १०, शूद्राभीराऽऽश्चदरदाः काश्मीराः । भीष्म अ० ९ श्लो० ६७।। शूद्रा ऽऽ भीरा देशेरकाः । द्रोण० अ० २० श्लो० ६।।

होकर सिंधु और राजस्थानकी प्रासिद्ध 'सोढा' राजपूत जातिमें से हैं। भगवान् पाणीनिके गणपाठमें 'शौद्रायण' विषय (=देश) का उल्लेख है (पा० अ० ४।२।५४॥)। व्यांकरण महाभाष्यकार श्री पतंजलिने भी १।२।३॥ सूत्रपर भाष्य करते हुए आभीरोंका शूद्रोंके साथ उल्लेख किया है। यूनानी भाषामें उनको सोडराइ (Sodrai) अथवा सोग्दोई (Sogdoi) कहा जाता था[1]। महाभारतके सभापर्वमें उनको 'शौण्डिकाः' कहा गया है[2]। कुक्कुर और शकोंके साथ उल्लेख होनेसे वह शक जातिकी एक आर्य शाखा थी। मत्स्य पुराणमें उनको 'शूलिका' कहा गया है और वे चक्षु [Oxus] नदीके तटपर रहते थे[3]। श्री. बी. सी. ला महाशयजीने शूलिका और चूलिका को एक ही माना है। एवं शूलिकासे सोलंकी और चूलिकासे चालुक्य क्षत्रिय जातियाँ उत्पन्न हुई हैं[4]। चूलिका-

---

1. The Ābhiras are associated with the Sudras who are most likely identical with the Sodrai or Sogdoi at Greek historians of Alexander's time ' T. A. I., pp. 79.

२ 'शौण्डिकाः कुक्कुराश्चैव शकाश्चैव विशांपते'॥१५॥ महा. सभा.अ.४८

३ अथ वीरमरूँश्चैव कालिकाँश्चैव शूलिकान्॥ तुषारान्बर्बराका-रान्पल्हवान्पारदाञ्छकान्।।४५।। एताञ्जनपदाञ्चक्षु प्लावयित्वोदधिं गताः

मत्स्य पुराण अ० १२१ (वेंकटे० शके १८४५)

4. ' The Śulikas should be identified with Cālukyas who are mentioned in the Mahākūṭa Pillar Inscription as calikya, names so near to Culika of the Purāṇas. The Sūlikas

पैशाची का हम आरंभमें नामनिर्देश कर आये हैं। श्री. एफ्. ई. पार्जीटर [F. E, Pargiter] ने चूलिका के तूलिका, चुलिका वूलिका, वूनिका, वूतिका, व्रूलिका, शूलिका, धूलिका, पुलिका, चलिका, वलिंका, और बाह्लिका इतने पाठभेद गिनाये हैं[1]। अस्तु।

वे आभोर जैसे जैसे अपने स्थान पंजाब और सिंधु से भिन्न-भिन्न स्थानोंपर फैलते गये, वैसे वैसे उनका अन्य जातियों के साथ भी उल्लेख मिलता है[2]। इस प्रकार वे पंजाबसे कोंकणतक फैल गये। पुराणोंमें आंध्र-भृत्योंके बाद आभीरोंका राज्य करनेका उल्लेख है[3]। टालिमी [Ptolemy] और परिप्लस [Periplus] [- A. D. 100-] महोदय आभीरोंका सौराष्ट्र देश में होनेका उल्लेख करते हैं[4]। गुंडा शिलालेखमें (A. D. 181) रुद्रभूति आभीरका वर्णन हुआ है। वह रुद्रसिंह

may further be identified with Solaki and Solanki of the Gujrat records. The Culikas and Śulikas may thus be the Same People'. (T. A. I., pp. 385).

1. J. R. A. S, London 1912, pp. 712.

२. "बाह्लीकाः वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः"
महा० भी अ० ९। ४७॥ वायु० पु० अ० ४४।११५॥
"ते वैरामा पारदाश्च आभीराः कितवैः सह"॥
महा० सभा० ५१।१३॥
"कोंकणाऽऽभीराः।" बृहत्संहिता अ० १४-१२॥

३. भागवत स्कं. १२। अ० १ श्लो० २९॥ विष्णु अं० २। अ० ३। गद्य ५१।

4. G. G. D. Part 1. pp. 167; T. A. I. pp. 80.

क्षत्रपका सेनापति था[१]। नासिकके शिलालेखमें (A. D. 300) शिवदत्त आभीरके पुत्र ईश्वरसेन आभीर का महाक्षत्रप होनेका जिक्र है (Ep. Ind. Viii pp. 88) । उसके सिक्के सारे काठयावाड़में पाये गये हैं[२]। प्रयागके लोहस्तंभपर समुद्रगुप्तकी विजय-प्रशस्तिमें (A. D. 350) मालव, अर्जुनायन, यौधेय माद्रक, आभीर, आर्जुन, सनकानीक, काक और खर्परोंके बीचमें आभीरोंका भी नाम है[३]। आंबेरीसे प्राप्त देवगिरिके राजा सिंहदेवके शिलालेखमें गुर्जर और मालवों के साथ आभीरोंके विनाश का भी उल्लेख है[४]।

शालिवाहन के बाद ३०० वर्षतक आभीर राजा खानदेश, नासिक, काठयावाड़, पालनपुर और कच्छ देशपर राज्य करते थे[५]। ईसवी प्रथम शताब्दिमें नेपालमें आभीरोंका राज्य था[६]। कुछ कालतक दिल्लीपर भी आभीरोंका राज्य रहा[७]। ईसवी आठवीं सदीमें गुजरातमें काठी लोगोंके आनेसे पूर्व वहाँ आभीरोंका आधिपत्य था[८]। हेमचंद्र के द्व्याश्रय काव्यमें अन्हिलवाड़ाके राजा सोलंकी मूलराजका (A. D. 974-996) सौराष्ट्र के आभीर राजा ग्राहरिपुके साथ युद्ध होनेका वर्णन है[९]। यादव-वंशमें देवेंद्र नामका एक राजा हुआ।

---

1. G. G. D. Part–1, pp. 167.
२. ना० प्र० प० भा० १८ अं० १
३. चंद्रगुप्त विक्रमादित्य–पृ० १६९.
4. Burgess Arch.Sur. Rep. 1878–88.
५, ६, ७, भा.म. चरित्रकोष, श्री सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, पूना पृ. ११९
8,–9. G. G. D. Part–1. pp. 164.

उसके असपत, गजपत, नरपत, और भूपत नामके चार पुत्र हुए। कच्छी बोलीमें उनके संबंधमें यह किंवदन्ति है –

‘ असपत धिल्ली राजिया, नरपत नगर भेर।
गजपत जा गिरनारमें, भूपत जेसलमेर ॥

(कच्छकलाधर, भा. १- पृ० ७)

गजपतके वंशमें उत्पन्न लोग ‘ चूडासमा ’ नामसे प्रसिद्ध हुए। उस वंश का प्रथम राजा ग्राहरिपु था जिसका हम अभी जिक्र कर आये हैं। सिंधी-लोक-गाथामें प्रसिद्ध नायक दानवीर राइ दियाचु (राय दयास) उसी चूडासमा नामके आभीर वंशमें उत्पन्न हुआ था। सिंधु और कच्छ में समावंशके हिंदू और मुसलमानों के कुछ उपनाम (=अवटंक) इस प्रकार हैं –साहिता, हिंगोर्जा, उढेजा, ओढा, जाडेजा, समेजा, नोतियार, लंजार, लाखा, जखरिया, राहिमा, पली, जोणेजा, आदि[१]।

बलोचिस्तान के लसबेलामें समा जातिमें मुख्य रूझा, जामोट, अङारिया और शेख हैं[३]।

श्री. पां. मा. चांदोरकरने आभीरों (अहीरों) के उपनाम इस प्रकार गिनाये हैं–आबलिया, बरदीया, भद्रक, भादिया, भेंड, भिभा, भोरीया, सूथर, चवड, छेत्री, छूचर, चूडासमा, गगीया, गोधम, गोहेल, गोरी, जोगल, कछोट, कमली, कनार, खव, खुंती, नंदानिआ

१–२ सिंधुजी तारीख भा० ३ तथा बलोचिस्तानजी तारीख।

पिडारिआ, पिथी, रावलि़या, संजव, सिंधव, सिसोदिया, वाडीया, वसर और विजव।

आगे चलकर उन्होंने खानदेशके अहीरोंके (आभीरों) नाम इस प्रकार बताये हैं। अहीर कुणबी, अहीर गुरव, अहीर सोनार, अहीर ब्राह्मण ; औरभी–बलदार खामवाले, बानिया, बडोदिये, बिलोरिये, धनोरिये, हजारिये, हिनवारे, कटारिये, कुकरेलियें, मोरिये, पधारिये, परवार, फुलखुंगे, रोमावंशी, गोआलवंशी, धीदमवर, भरवारिये, घोशी, और गूजर आदि '[1]।

श्री. चांदोरकरजीने खानदेशके आभीरोंके वाक्यप्रयोग, शब्दसंग्रह, क्रियापद, कथानक आदि का संग्रह किया है। उनमेंसे, हम यहाँ शब्दसंग्रहमें से केवल वे शब्द दे रहे हैं जो आजभी सिंधी भाषासे मिलते जुलते हैं।

अहिराणी	सिंधी	मराठी	हिन्दी
अभाय	उभु	आकाश	आकाश
आरशी	आरसी	आरसा	आईना
इतला	एतिड़ो	इतका	इतना
उखरन	उखेरणु	उपरणे	उखेरना
उच्छाव	उछव	उत्सव	उत्सव
कथ	किथे	कुठे	कहाँ

१. भारत इतिहास संशोधन मंडल पुणें का त्रैमासिक वर्ष–७ अं० १–४ पृ० १३७.

आहिराणी	सिंधी	मराठी	हिन्दी
कुदी	कुदु	उडी	कूद
खातरि	खातरि	करितां	लिए
खाली-पिलो	खालीपीली	उगिचच्या उगीच, व्यर्थ.	
खिजीपडन	खिजीपवणु खिजणु	हट्ट घेणें	खीजना
गारा	गारो	चिखल	गारा
गावडी	गाविड़ी	गाय	गौ
गंज	गंज	पुष्कळ, ढीग,	बहुत
जान	जानि	प्राण	जान
झगड़	झगिड़ो	तंटा	झगड़ा
डिंगर्या	ढिंगियूं	मुळ्याच्या शेंगा, मूलीकी फली	
तितला	तेतिड़ो	तितका	उतना
दर	दर, दार	खड्डा	गढ़ा
देराणी	देराणी	धाकटी जाऊ	देवरानी
नाथ	नथ, नकेली	नाकातील वेसण	नथ
बास्न	बासण	भांडी कुंडी	बर्त्तन
भंडारी	भंडारी	भिंतीतील पैसे ठेवण्याचे लहान फडताळ	
मुक्ता	मुक्तो	पुष्कळ	बहुत
मुडन	मुड़णु	मोडणे	मुड़ना

आहिराणी	सिन्धी	मराठी	हिन्दी
याद	यादि	आठवण	याद
राकेस	राकासु	राक्षस	राक्षस
हयाती व्हई	हयाती हुजेई	चिरंजीव हो	चिरंजीव
हेटे	हेठि	खालच्या बाजूस	नीचे

इतने विस्तृत वर्णनसे यह स्पष्ट है कि सिंधुके लाड़ाई पौराणिक कालके आभीर और यादव एकही थे। आभीरोंकी भाषा अपभ्रंश थी यह ऊपर बताया गया है। देशकालानुसार अपभ्रंशके अनेक भेद थे। उनमें आभीर अपभ्रंश मुख्य था।

व्राचड़ शब्दकी उत्पत्ति

संभव है कि ये आभीर भारतमें बाहरसे आनेके कारण ' वृषल ' कहे जाते होंगे। प्राकृत भाषामें मूर्धन्य 'ष', 'छ' में बदल जाया करता है। जैसे 'षण्मुखं' का 'छम्मुहो' और 'षट्पद:'का 'छप्पओ' आदि। इस प्रकार ' वृषल ' का रूप होगा 'व्रछलो'। 'छ' समान वर्गीय 'च' में और 'डलयोरभेद: ' इस नियमानुसार 'ल'-'ड' में बदल जानेपर ' व्रछलो ' का रूप होगा ' व्रचडो ' और उनकी भाषाको ' व्राचडो ' कहा गया होगा।

परमश्रध्देय श्री सुनीतिकुमार चट्टर्जीका सुझाव है कि आभीरोंकी वृत्ति गो-पालन होनेसे उनके गाँवोंको संस्कृत भाषामें 'व्रज' कहा जाता है।

' ज ' – ' च ' में बदल जानेपर और अंतमें 'ल' प्रत्यय जोड़नेपर 'व्रचल' रूप होगा। 'ल'-'ड' में बदल जानेसे ' व्रचल ' का ' व्रचड ' और फिर ' व्राचड ' रूप बना होगा।

कुछ विद्वान 'व्रात्य' शब्द से ' व्राचड ' की उत्पत्ति मानते हैं। प्राकृतमें प्रायः ' त्य ' का ' च्च ' हो जाता है। जैसे – ' सत्य ' का ' सच्च '। इसप्रकार 'व्रात्य' का रूप होगा 'व्राच्च'। अन्त में ' ड ' प्रत्यय जोड़ने से होगा ' व्राच्चड ' और बादमें ' व्राचड '।

व्रात्य और व्रात एक ही थे ऐसा श्री वासुदेवशरण अग्रवालजीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ' पाणिनि-कालीन भारतवर्ष ' में बताया है, और वहाँ उनका विस्तृत रूपसे वर्णन किया है (पृ० ४५३)। ऋग्वेदमें आर्योंको ' व्रातसह ' कहा है (ऋ० ६।७५।९॥)। भगवान पाणिनि ने ' व्रात-संघों ' का उल्लेख किया है (सू. ५।३।११३)। महाभारतमें दार्वाभिसार और दरद-जनपदों के निवासियोंको ' व्रात' कहा है (महा० द्रो० ९३।४४)। श्रीमद्भागवतमें सौराष्ट्र, आवन्त्य, आभीर, शूद्र, अर्बुद, और मालव के द्विजोंका व्रात्य होना लिखा है (भाग० स्क० १२। अ० १। श्लो० ३८)। ये लोग उत्सेध-जीवी थे अर्थात्–लूट-मारपर जीविका करते थे (पा० महा० भा० ५।२।२१)। पंचनद देशमें अर्जुनको लूटनेवाले आभीरोंका वर्णन ऊपर आया है। अस्तु।

यह 'व्राचड अपभ्रंश' सिंधु देश में बोला जाता था, ऐसा मार्कण्डेयजीका कहना है[1]। सिंधु-सागर-दुआब ही प्राचीन सिंधु-जनपद था[2]। वर्त्तमान सिंधुको उस समय सौवीर कहा जाता था। जिसकी राजधानी 'रोरुक' (रोरी, रोहिड़ी) थी[3]। आजका कच्छ-प्रदेश प्राचीन कालमें भी कच्छ नामसे प्रसिद्ध था। सिंधुसागर दुआबकी भाषाको श्री ग्रियर्सनने 'लँहदा' नाम दिया है और हिन्दुओंकी भाषाको 'हिन्दकी' नाम दिया है[4]। कुछ विद्वानोंका मत है कि 'हिन्दकी' केवल हिन्दुओंकी भाषाको कहना ठीक नहीं, परंतु उस संपूर्ण प्रदेशकी भाषाको ही 'हिन्दकी' कहना चाहिए[5]। कारण सिंधुसे ही हिन्दू शब्द बना है, अर्थात् उस प्रदेशमें रहनेवाले सब हिंदू हैं और उनकी भाषा हिन्दकी है। हिन्दकी, सिंधी और कच्छी ये तीनों बोलियाँ थोड़ी हेरफेर के साथ लग भग एक ही हैं। इसलिये मेरा विचार है कि इन तीनों का मूल 'व्राचड' अपभ्रंश होना चाहिए।

---

१. "व्राचडो नागरात् सिद्धेत्"। सिंधुदेशोद्भवो व्राचडोऽपभ्रंशः ××× प्राकृत सर्वस्व० पाद० १८ सूत्र १॥

२. पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ. ६३

३. वहीं पृ. ६४ तथा भारतवर्षका अितिहास पृ. १५९॥
दंतपुर कलिंगानां अस्सकानांच पोतनम्।
माहिस्सतीं अवंतीनां सावीराणाच रोरुकम्॥

४. लिं स. अिं. भा. ८–

५ भा. भू. नि. पृ. २२९ टिप्पणी.

सिन्धी-भाषा के छः भेदोंमें 'कच्छी' का वर्णन आ रहा है, अतः यहाँ केवल 'हिन्दकी' (लहँदा) के कुछ शब्द दिये जाते हैं, जिनसे मालूम होगा कि वे सिन्धी की 'सिराइकी-बोली' से कितने मिलते हैं।

सिराइकी	झेलमकी धन्नी	पिशावरकी हिन्दकी	तिनाउली	
माँ	माँ	माँ	मेँ	(मैं)
मादा	माँदा, मादा, माँहदा, माहदा	मेरा	मेह्रा	(मेरा)
असीँ	असोँ, अस्सीँ	अस्सी	असीँ	(हम)
तूँ	तूँ	तूँ, तू	तूँ	(तू)
तुसाँ	तुसीँ, तुस्सीँ	तुसी	तुसीँ	(तुम)
तुसादाँ	तुसादाँ	तुसादा	तुस्दा	(तेरा)
ओह्	ओह्, उह	वोह, ओह, ऊ,	ओह	(वह)
उसदा	उसदा	उसदा	उसदा	(उसका)
उन्हाँदा	उन्हाँदा	उन्हाँदा, उनाँदा	उनहाँदा	(उनका)
पिओ	पिओ	पिऊ	पेओ, पे	(पिता)
भ्रा	भिरा	भ्रा, भिरा	भिरा, लाला	(भाई)

सिराइकी	झेलमकी धन्नी	पिशावरकी हिन्दकी	तिनाउली
भेण	भाण	भाण, भेण	भाण, भेण (बहन) बेबे

सिन्धुके प्रसिद्ध संत कवि सच्चलकी सिराइकी-सिन्धी की एक कविता पढ़िए:—

बोलि पखी परदेसीअड़ा तूँ कहिड़े देसऊँ आवंद एँ।
बोल पंछी परदेसके तू किस देश से आवा है।
हथ विच मुरली पेरें घुंघुड़ूँ, गलीअ-गलीअ बजावंद एँ।
हाथ में मुरली, पावमें घुंघरू, गली गली बजाता है।
उथों आया पेरें लंगड़ा, इथों त पाँवर पावंद एँ।
वहाँ से आया पाँवसे लँगड़ा, यहाँ तो पाजेब पहनता है।
जदहाँ तूँ आयो ढूँढ-महल विच, तदहाँ तूँ क्या कुझु खावंद एँ॥
जब से तू आया शरीर महलमें, तब से तू क्या कुछ खाता है।
जदहाँ तूँ आयो बालापण विच, हर किसी नूं भावंद एँ।
जब से तू आया बालपन में, हर किसी को भाता है।
जदहाँ तूँ आयो मद-घर विच, आदि अंत भुल जावंद एँ
जब से तू आया जवानी में, आदि-अन्त भूल जाता है।
लाला मोहन ! लज नहीं आवंदी, ज़रा नहीं शरमावंद एँ।
लाला मोहन ! (तुझे) लाज नहीं आती, जरा नहीं शरमाता है।
'सच्चू' ज़ात सिफ़ात दे विच सहजऊँ आउ समावंद एँ।
'सच्चू' जाति-गुणमय में, सहज आकर समाता है।

द्वितीय परिच्छेद

शब्दोंमें परिवर्त्तन और उसका तत्त्व

शब्दों में परिवर्त्तन का वर्णन करनेसे पूर्व उनके मूल तत्वको जानना परम आवश्यक है।

शब्द शास्त्रके अद्वितीय विद्वान भगवान श्री पाणिनि मुनिने जिन माहेश्वर - चतुर्दश - सूत्रोंकी नींव पर अपनी अष्टाध्यायीकी रचना की है, उसके विस्तारमें न जा कर ध्वनिके बारेमें संक्षेपमें इतना ही कहना होगा कि उसकी उत्पत्तिके तीन प्रकार हैं:—

१ मुख खोलना, २ मुख का अल्पसिकुड़न; ३ मुख का अतिसिकुड़न।

माहेश्वर - चतुर्दश - सूत्रों में प्रथम सूत्रका आरंभ इसी सिद्धांतपर हुआ है। जैसे -- 'अ - इ - उण्'। मुख खोलनेसे 'अ' की

ध्वनि होती है, अल्प सिकुड़नेसे ' इ ' की, और अति सिकुड़नेसे ' उ ' की। ये तीनों शुद्ध स्वर हैं। ऋ और लृ ये दोनों ' र ' और'ल'के समीप की ध्वनिवाले होनेसे शुद्ध स्वर नहीं माने जायेंगे। अ+इ; अ + उ; और अ + ए और अ + ओ स्वरोंका जब शीघ्रतासे उच्चार किया जाता है तब वे एक साथ मिलकर ए, ओ, ऐ, औ इन संयुक्त स्वरों का रूप धारण कर लेते हैं। य् व् र् ल् ये अंतस्थ कहे जाते हैं। कारण इन की ध्वनि इ, उ, ऋ और लृ स्वरोंके समीप की होनेसे ये न पूरे स्वर हैं और न पूरे व्यंजन। अतः अंग्रेजी में इनको ' Semi-Vowel ' कहा गया है।

क-वर्ग और च-वर्ग तथा ट-वर्ग और त-वर्ग परस्पर ध्वनि सान्निध्यके कारण एक दूसरे को स्थान दे देते हैं।

कभी स्थान सादृश्यके कारण एक वर्ग के वर्ण भी परस्पर बदलते रहते हैं।

बस, संपूर्ण संधियां और वर्ण-परिवर्तनका इतना ही तत्व है। जैसे जैसे भाषा संस्कृत होती है वैसे वैसे इन नियमोंका भी सख्तीसे पालन किया जाता है। प्राकृत भाषाओंमें वर्ण-परिवर्तन तो होता रहा है परंतु स्वर-सन्धिके नियमोंका पालन नहीं किया गया है। कारण उसमें स्वरोंका विशेष महत्व है। इसलिये प्राकृत-भाषाओंको बाल-भाषा भी कहा जाता है। क्योंकि बालक भी बोलना सीखते समय स्वभावतः स्वरोंका अधिक और व्यंजनोंका कम प्रयोग करता है।

प्रत्येक संस्कृत (अर्थात् व्याकरणके नियमोंद्वारा संस्कार की गई) भाषाकी अपनी अपनी बाल-भाषा होती है। यहाँ सिंधी प्रधान विषय होने से उसकी बाल-भाषा का कुछ वर्णन किया जाता है।

संस्कृत-सिंधी	बाल-भाषा-सिंधी	वक्तव्य
जाग्यो आहे (जागा है)	गागो आए	ज का ग में परिवर्तन य और ह का लोप।
चरियो (पागल)	चलिओ	र का ल में परि०, य-लोप। इ और ओ की सन्धि नहीं
लड़ाई	ललाई	र का ल में परि०
चोरु (चोर)	चोलु	,, ,,
चकु हणाइँ (दाँतोंसे काटना)	ककु अनाइँ	च का क में परि०। ण का न में परि०। ह का लोप।
छो (क्यों)	शो	छ का श में परि०
छंछरु (शनैश्चर)	शंशलु छंछलु	छ का श में और रका-ल में परि०।
तोखे (तुमको)	टोके.	त का ट में और ख का-क में परि०।
खमीस (कुर्ता)	कमीछ	ख का क में, स का छ में परि०
कुतो (कुत्ता)	कुटो	त का ट में परि०
हरे रामु	अले लामु	र का ल में परि० ह-लोप।
खबर	कबल	ख का क में, र का ल में परि०

संस्कृत-सिंधी	बाल-भाषा सिंधी	वक्तव्य
चुमी (चुंबन)	पुमी	च का प में परि० ।
पटते (जमीनपर)	पतते	ट का त में परि० ।
लपाट (थप्पड़) चपाट (,,)	पपात	ल और च का प में तथा ट का त में परि०
भगो (भागा)	बगो	भ का ब में और ग का ग में परि० ।
भाकुरु (आलिंगन)	बाकुलु.	भ का ब में और र का ल में परि० ।

अब संस्कृत और प्राकृत के उदाहरण देखिये:—

संस्कृत	प्राकृत	वक्तव्य
व्यासर्षिं	वासइसी	य का लोप; ऋ का इ में ष का स में परि०। अ+इ की सन्धि नहीं।
आतपः	आअओ	त, प का लोप, स्वर संधि नहीं
कवीश्वरः	कइ ईसरो	व का लोप, श का स में परि०
मुग्धायाः	मुद्धाए	ग्ध का द्ध में परि०
लक्ष्म्याः	लच्छीए	क्ष का च्छ् में परि. ।

अब एक अपभ्रंश का उदाहरण लीजिये:—

'एइ ति घोडा एइ थलि एइ ति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणीअइ जो नवि वालइ वग्ग॥

संस्कृत छाया :—

एते ते घोटकाः एषा स्थली एते ते निशिताःखगाः।
अत्र मनुष्यत्वं ज्ञायते यो नापि वालयति वल्गाम्॥

(षड्भाषाचंद्रिका)

यहाँ घोड़ा + एइ, थलि + एइ, निसि + आ, जाणी + अइ, स्थानोंपर संधि नहीं; और घोटक = घोडा—ट का डमें. निशिता = निसिआ, श का स में, यो न = जो न, य का ज में अपि = वि; प का व में परिवर्तन हुआ है।

एक अवेस्ता का उदाहरण लीजिये—

'येङ्हे हाताँम् आअत् येस्ने पइति
वङ्हो३ मज्दा॑ो अहुरा३ वए३था।
अशात् हचा योाङ्हाँम्-चा
ताँस्-चा तोास्-चा यज़मइदे॥' (डि. सां. ग्रर. पृ. XIX)

यहाँ आ+अत्, प+इति, मज्दा+ओ, व + एथा, या + ओङ्, ता+ओस् और यज़म+ अिदे आदि स्थानोंपर संधि नहीं है।

वैदिक भाषामें भी कहीं कहीं संधि नहीं देखी जाती। जैसे पुरएता. (ऋ. ६।४७।७।।) तितउना (ऋ० १०।७१।२॥), प्रउगं (ऋ० १०।१३०।३॥), नम उक्तिभि: (अ० ८।४।६॥), अभू दुभाउ अंशवे (ऋ० १।४६।१०॥), धनसाउईमहे (ऋ०-१०।६५।१०॥), पूषा अविष्टु (ऋ० १०।२६।९॥,) इत्यादि।

लौकिक संस्कृतमें भी कुछ स्थानोंपर संधि नहीं होती। जैसे मुनो + आगच्छत:, माले + आनयति, गुरू + उपदिशत:, यहाँ संधि न होनेका कारण इनको प्रगृह्य कहा गया है। जहाँ य् और व् का लोप होता है वहाँ भी संन्धि नहीं होती। जैसे द्वा+अपि, हस्ता+उद्धर, मन्यत+आत्मानम्। जहाँ विसर्ग का लोप होता है वहाँ भी संधि नहीं होती। जैसे नरा अटन्ति,नृपा+इच्छन्ति,भिक्षुका+ उञ्छन्ति। आदि।

यह सर्व साधारण बात है कि, जो भाषा बोल-चालकी होती है उसमें देश-कालानुसार परिवर्त्तन होता ही रहता है। व्याकरणके नियमोंमें बद्ध होनेके कारण यह बात संस्कृतमें रुक गई; परंतु वैदिक भाषा इस बंधनसे मुक्त होनेके कारण उसमें वर्ण-आदिके परिवर्त्तनोंके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। यह बात नीचे के कोष्टकसे स्पष्ट हो जायगी –

ल का र में परिवर्त्तन - अनारम्भणे ऋ० १।११६।५॥

अनालम्बन इत्यर्थ:।

'चादरं' च+आत् अरं=अलं।

ऋ० २।५।७॥

'रिहन्ति' ऋ० २।९५।१७॥

लिहन्तीत्यर्थ:।

सिन्धी का भी एक उदाहरण लीजिये:—

'पेही मंझि पातार जे माणिक मेरियाऊँ'
शाहजो रसालो, सुरु सारंगु २।९॥
यहाँ पाताल का पातार हुआ है।

'ह' का 'भ' में परिवर्तन अग्रभणे' ऋ० १।११६।५॥ अग्रहण इत्यर्थः। 'जभार'—ऋ० २।९।३॥ जहार इत्यर्थः।

'ग' का 'ज' में परिवर्त्तन 'भोजं' ऋ० २।२८।९॥ भोग मित्यर्थः

व्यंजन लोप— 'सुरणः' ऋ० ३।३।९॥ सुरमण इत्यर्थः
'कायमानः' ऋ० ३।९।२॥ कामयमान

स्वर लोप— 'त्मना' ऋ० ३।३।१०॥ आत्मना'

इस प्रकार वैदिक साहित्यमें अनेकों उदाहरण मिलेंगे। यहाँ केवल स्थालीपुलाक-न्यायसे कुछ शब्दों का उल्लेख किया गया है। आगे हम सिंधी भाषाके शब्दों में परिवर्तन का वर्णन करते हैं:—

सिंधी-भाषामें शब्द-परिवर्त्तन:—

	सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
'ऋ' वर्ण 'अ' में बदल जाता है-	कृत	कतं	कयो	किया
ऋ ,, आ ,, ,,	नृत्य	णच्चं	नाचु	नाच
ऋ ,, अर ,, ,,	कृ	-	करणु	करना
	मृ	-	मरणु	मरना

	सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
'ऋ' ,, 'रि' ,, ,,	ऋक्षः	रिच्छ	रिछु	रीछ
	ऋतु	रिदु	रितु	ऋतु
'ऋ' ,, 'अि' ,, ,,	दृष्टं	दिट्ठं	दिठो	देखा
	गृहीत	गहिअं	गिधो	लिया
	हृदयं	हृदअं	हियों	हृदय
	गृद्ध	गिद्धो	गिझ	गीध
'ऋ' ,, अी ,,	घृतं	-	गीहु	घी
'ऋ' ;, इरि ,,	कृत्यं	-	किरिति	कार्य
	वृत्ति	-	विरिति	वृत्ति
'ऋ' ,, अु ,, ,,	मृतः	मुओ	मुओ	मरा(मृत)
	पृष्ठं	पुट्ठं	पुठी	पीठ
	शृणु	सुणु	सुणु	सुन
	वृष्टिः	वुट्ठि	वुठो } उठा; }	{ वर्षा, { बरसात

' वुठो मीहुँ वद फुरो ' शाह. र. सारं-१।११॥

'को जो अुठुसि मीहुँ - ' ,, ,, हुसेनी ११।९॥

'श' } ष } ,, 'स' ,, ,,	शरीरं	सरीरं	सरीरु	शरीर

	सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
	शिरः		सिरो,सिरु	सिर
	शीर्ष		सिसु सीसु	शीश
'ष' वर्ण 'ख' में बदल जाता है।	आषाढ	आसाढं	आखारु	आषाढ
'ष' ,, 'ह' ,, ,,	पौष	पुसो	पोहु	पूस
	वर्ष	वरिसं	वरिहु	बरस
'क्ष' ,, 'ख' ,, ,,	क्षीरं	खीरं	खीरु	खीर
	क्षात्रिः	खत्री	खत्री	खत्री
	आक्षि	आक्खि	आखि	आँख
	मोक्षं	मोक्खं	मोखु	मोक्ष
	अक्षोट	अक्खोटं	अखिरोटु	अखरोट
	पक्षी	पक्खी	पखी	पंछी
	क्षेम	खेमो	खेमो (नाम)	
'क्ष' ,, 'छ' ,, ,,	ऋक्षः	रिच्छो	रिछु	रीछ

शब्दमें संयुक्त रेफ का लोप हो जाता है:—

कर्म	कम्म	कमु	काम
धर्म	धम्मो	धमो(व्यक्ति नाम)	धर्म
सर्व	सब्वो	सभि	सब
ग्राम	गामो	गामु	गाँव
सूत्रं	सुत्तं	सुट्ठु	सूत

	सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
संयुक्त 'द्य' 'ज' में बदल जाता है—				
	अद्य	अज्ज	अजु	आज
	वैद्य	वेज्जं	वेजु	वैद
	'अन्धा	ऊन्धा वेज—शा० क०'२।२॥		
संयुक्त 'त्य' 'च' में बदल जाता है	सत्यं	सच्चं	सचु	सच
	नृत्यं	नच्चं	नाचु	नाच
संयुक्त 'न्य' ञ में बदल जाता है	शून्यं	सुञ्ञं	सुञो	सूना
	जन्यं	जञ्ञं	जञ	
,, 'ष्प' ,, 'फ' में ,, ,,	वाष्पं	बप्फं	बाफ	भाफ
,, 'ष्ट' ,, 'ठ' में ,, ,,	तुष्टः	तुट्ठो	तुठो	संतुष्ट
	रुष्टः	रुट्ठो	रुठो	रूठा
	मिष्टं	मिट्ठं	मीठो	मीठा
,, 'स्त' ,, 'थ' में ,, ,,	स्तंभ	थंभो } तंभो }	थंभु	खंभा
	हस्तं	हत्थं	हथु	हाथ
	स्तनं	थणो	थणु	स्तन
	हस्ती	हत्थी	हाथी	हाथी
संयुक्त 'त्स' 'य' में बदलता है	चिकित्सा	चिकिआ	चिकिया	चिकित्सा

उदाहरण अगले पृष्ठपर

' पाणही बधनि पटियूँ पाणहि चिकिया कनि '

शा. यम. १।१२॥

		सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
,, 'स्थ,	'थ, में ,, ,,	स्थूलं	थुल्लं	थुल्हो	स्थूल
		स्थानं	थाणं	थानु,थाणो	स्थान
'त्स्य'	'छ' में ,, ,,	मत्स्य	मच्छं	मछु	मछी, मछली
,, 'श्र'	,, 'छ' पें,, ,,	श्मश्रू	मंसू	मुछूँ	मूँछ

वर्गोंके द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण एवं श, ष, और स 'ह' में बदल जाते हैं। जैसे:—

सं. वल्लभ:, प्रा.वल्लहो सिं. वल्हो, हिं. वल्लभ —

" वटि सोरीं दे वल्हा वियो तेलु बरी "

(शा. मूमलराणो १।४॥)

सं—गम्भीर— सिं गहीर — हिं – गहरा - प्रा. गहीर —

"से मारूअरा थडिथिया. जे गुणनिजा गहीर " ।

शा. मारुई. ११।६५॥

कलभ: – करहो । करहा ऊँट का बच्चा

,, करहा काकि चढ़ीं "

शा० मू० १।१०॥

संस्कृत	प्रा.	सिंधी.	हिंदी.
सन्देशः	संदेसो	सनीहो	संदेसा
गोधा	गोह	गोह	गोह

सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
पौष	पुसो	पोह	पूस
श्वशुर:	ससुरो	सहुरो	ससरा
घासं.	घासो	गाहु	घास
सौभाग्यं	सोहग्गं	सुहागु	सुहाग
मुखं	मुहं	मूँहु	मुँह

प्राय, सभी वर्ण अदने अपने वर्गोंके वर्णों में बदलते रहते हैं। जैसे—

संस्कृत	प्रा	सिंधी	हिंदी
कंपनं	कंबणं	कंबणु	काँपना
कुंती	कुन्दी	कुंदी	कुंती
लगुडं	लगुरं	लकुणु	लकडी
आम्र.	अंबो	अंबु	आम
मुकुटं	मुउअं	मुकुट	मुकुट

कहीं कहीं अपने वर्गसे भिन्न वर्णोंका भी आदेश होता है। जैसे :—

संस्कृत	प्रा.	सिंधी	हिंदी
कातर:	काअरो	कायरु	कायर
विपुलं	विउलो	गपलु	विपुल
पाद	पाओ	पेरु	पैर
कुमार	कुआरो	कुँवारो	कुँवारा
पर्यंक	पलिअंगो	पलंगु	पलंग

सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
आदित्यवार	आइतआलो	अरितवारु	अितवार
लपनं	लवणं	लवणु	बोलना
पार्वती-	पव्वइ, फव्वइ, पार्वती		पार्वती

कहीं कहीं आदि, मध्य और अंतके वर्णोंका लोप हो जाता है। जैसे :—

ग्राहक	गाहगो	ग्राकु	ग्राहक
झटिति	झति	झटि	झट
दिवसं	दिओ	दीहूँ	दिन
मैरेयं		मय	मय
आयतनं	आअणणं	आतणु	स्थान

" खुइ कतणु बनिं कपाह खुइ आतणु बनि जेडियूँ "

शा. हुसेनी २।१२।।

कहीं वर्ण का आगम होता है। जैसे –

सं.	सिं.	हिं.
ओकः	ओताक	बैठक

" अगरु ओताकुनिमें खथूर्यू खट्टुनि "

शा० मूम० २।४।।

कही वर्ण का विपर्यय हो जाता है। जैसे:—

सं,	प्रा.	सिं.	हिं.
वच	चव	चवणु	बोलना
मुकुटं	मुउअं	मुट्कु	मुकुट

सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
चारकः		चाकरु	चाकर

प्रायः संयुक्त-व्यंजन के आगे स्वरका आगम होता है। जैसे—

स्त्री		इस्त्री	स्त्री
स्तुतिः		अस्तुति	स्तुति
स्नानं	सणाणं	आसिनानु	असनान
स्थानं	थाणं	आस्थानु	स्थान
(इं)-स्कूल (School)		इस्कूलु	इस्कूल
(इं) स्टेशन् (Station)		इस्टेशन्	स्टेशन्

— स्वर-भक्ति —

प्रायः शब्दके आरंभमें आये हुए संयुक्त व्यंजनको अलग कर उसमें स्वर-संयोग किया जाता है। जैसे—

सं.	प्रा.	सिं.	हिं.
त्यागं		तियागु	त्याग
श्लोक	सलोओ	सलोकु	श्लोक
स्नेहं	सणेहं	सनेहु	सनेह
श्राद्धं	सराधं	सराधु	श्राद्ध
स्नानं	सणाणं	सनानु	असनान
प्राणाः	प्पाणोः	पिराण	प्राण

इस प्रकार शब्द के मध्य में आये हुए संयुक्त व्यंजनमें भी स्वर मिलाकर उस को अलग किया जाता है। जैसे —

सं	प्रा.	सिं.	हिं.
कार्य	कज्ज	कारजु	काज
धैर्य	धेज्जं	धीरजु	धीरज
सूर्य:	सुज्जो	सूरजु	सूरज
गर्भ	गब्भो	गरभु	गरभ
हर्ष	हरिसं	हरिखु	हरष
धर्म	धम्मो	धरमु	धरम
कर्म	कम्मो	करमु	करम
वर्ष:	वरिसो	वरिहु	बरस
स्वप्नं	सुवणं	सुपिनो	सपना
मिश्र:	मिसलो	मिसिरु	मिसिर
भक्त:	भत्तो	भगतु	भगत
रत्नं	रयणं	रतनु	रतन
यत्नं	जयणं	जतनु	यतन
मूर्ख:	मुक्खो	मूरखु	मूरख.

— स्वर लोप —

कहीं कहीं शब्द के आदिमें आये हुए स्वर का लोप होता है। जैसे (सं–) अरण्य (सिं) रिणु (हिं) अरण्य। अपत्य - (प्रा० अवच्चउ) (सिं.) बचो, बच्चा।

शब्द के मध्यमें स्वरके लोप का कोई उदाहरण अब तक नहीं मिला। सिंधी में अंतिम स्वरका लोप होता ही नहीं। कारण

यह भाषा अंतिम - स्वर - प्रधान है, अर्थात् इसमें अंतिम स्वर का स्पष्ट उच्चार होता है।

कहीं कहीं शब्दों में आये हुए स्वर का व्यत्यय हो जाता है। जैसे—

हरिणः = हरणु। पृष्ठं = पुठी। गौः = गाइँ।
दर्दुरः = डेदरु। शकटः = छकिड़ो।

कहीं कहीं अनुनासिक का आगम होता है। जैसे
यस्य = जँहिँजो। कस्य = कँहिँजो। तस्य = तँहिँजो।
कदा हि = कदहिँ। तदा हि = तदहिँ। यदा हि = जदहिँ। गौः = गऊँ, गाइँ। लीला = लीलाँ। चंद्रा = चंदिराँ।

कहीं कहीं अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे —
मांस = मासु। गंत्री = गादी। निमंत्रण = नोतो।

तृतीय परिच्छेद

सिंधी भाषाके भेदः—

(१) सिराइकी, (२) विचोली, (३) लाड़ी, (४) थड़ेली (५) कच्छी और (६) लासी ।

इस प्रकार सिंधी भाषाके छः भेद माने जाते हैं, जिनका स्थान-निर्णय नीचे संक्षिप्त रूपसे दिया जाता है ।

(१) सिराइकी:—

सिंधु देशका उत्तरीय-भाग जो कि सिंधु-नद के पूर्व-तटमें खैर-पुर रियासतसे लेकर उबावड़ा तालुका तक तथा पश्चिम-तटपर दादू ज़िलाके सेहवान शहरसे लेकर संपूर्ण लाड़काना जिला और जेकबाबाद जिलाके कश्मोर तालुका तक है वह सारा भू-भाग सिंधु का सिर (=शिर) अर्थात् शीर्ष-भाग माना जाता है। अतः इस प्रदेश को सिरो कहा जाता है ! यहाँ जो सिंधी बोली जाती है उसको सिराइकी

या 'सिरेली' कहते हैं। इस प्रदेशमें बरोच (बलोच) और जत (= जाट, ऊँट चरानेवाले) कौमके लोग प्रचुर संख्यामें रहते हैं और वे लोक सिराइकीका प्रयोग अधिक करते हैं, इसालिये उसको बरोचिको तथा जतिकी सिंधी भी कहा जाता है। सिराइकी के थोड़े बदले हुएँ रूपको 'उभेजी बोली' कहते हैं। जेकबाबादके कश्मोर तालुकासे लेकर मुलतान के बहावलपुर रियासत तक का भू-भाग उभो कहलाता है, जिसका भी अर्थ है खडा भाग अर्थात् शिरो - भाग।

(२) विचोली - सिंधी

सिरो तथा लाड़के मध्यका भाग विचोलो कहलाता है (विचोलो = विचवारो = बीचवाला)। इसमें सिंधु-नदके पूर्व-तटपर कण्डियारो तालुकासे तथा पश्चिम-तट पर सेहवानसे लेकर कोटरी डिविजन तक का भू-प्रदेश आ जाता है। यहाँ बोली जानेवाली सिन्धी विचोली कहलाती है।

(३) लाड़ी - सिन्धी

सिन्धु प्रांत का दक्षिण-भाग जिसमें हैदराबाद जिलाके बदीन तालुकासे लेकर गूनी तालुका तक का प्रदेश एवं कराची का संपूर्ण जिला है वह लाड़ कहलाता है। यहाँ की सिन्धी लाड़ी कहलाती है।

[४] थड़ेली सिन्धी

सिन्धु नदके पूर्व-तटवाले भागमें खेरपुर रियासत, नवाबशाह-जिला, हैदराबाद जिला, कच्छ का अरण्य तथा जोधपुर-रियासत

ये सब जिसकी सीमाएँ हैं ऐसा प्रदेश थड़पारकर नामसे प्रसिद्ध है। इसके सामारो, डिगिड़ो, साँघड़, खिपिरो, अमरकोट, मिठी, दीपिलो और छाछरो तालुकाओंमें बोली जानेवाली भाषा 'थड़ेली' कही जाती है जो माड़वारी और सिन्धी-भाषा का संमिश्रण है। शेष मीरपूरखास तथा जेमसाबाद तालुकामें विचोली-सिंधी एवं नगर-पारकर तालुकामें कच्छिकी - सिन्धी बोली जाती है।

(५) कच्छिंकी-सिन्धी

सिंधुके थड़पारकर जिलाका नगरपारकर तालुका तथा गुजरात का कच्छ-प्रदेश, इनमें जो भाषा बोली जाती है उसे कच्छिकी-सिन्धी कहते हैं।

(६) लासी-सिन्धी

लसबेलो की रियासत, बलोचिस्तानके दक्षिणमें क़लात रियासत के अधिकारमें हैं। इसके उत्तरमें क़लात रियासतका झलावान अलायक़ा, दक्षिणमें सिन्धु का कराची तालुका तथा अरबी-समुद्र, पूर्व में भी झलावान का कुछ भाग तथा पश्चिम में मकरान हैं। यहाँ बोली जाने-वाली भाषाको लासी-सिंधी कहते हैं।

अब प्रसंगसे प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

सिराइकी सिंधी

मुख्यतः उत्तर-दक्षिण भेदसे सिंधुके दो भाग माने गये हैं। इन भागों में बोली जानेवाली सिंधी-भाषामें भी उच्चारोंका थोड़ा-थोड़ा

भेद पड़ गया है। जहाँ उत्तर-सिंधुमें प्रत्येक शब्दके अंतमें स्वरपर विशेष बल दिया जाता है, उसका विवृत उच्चार किया जाता है, वहाँ दक्षिण-सिंधुमें उसकी आवाज कुछ कम पड़ जाती है और वह संवृत्त हो जाती है[1]। यह बात इसी पुस्तकके प्रथम परिच्छेदके ' सिन्धी-भाषा का वैदिक-भाषासे संबंध ' नामक प्रकरणमें स्पष्ट की गई है।

इस विषयका यहाँ कुछ अधिक स्पष्टीकरण दिया जाता है।

उत्तर-सिंधुमें प्राय-शब्दमें जहाँ 'अ' और 'आ' का उच्चार होता है वहाँ दक्षिण-सिंधुमें वह 'इ' और 'ए' में बदल जाता है। जैसे :—

उ. सिं.	द. सिं.
जनि	जिनि (यैः)
तनि	तिनि (तैः)
कनि	किनि (कैः)
जाते	जिते (यत्र)
ताते	तिते (तत्र)
काथे	किथे (कुत्र)
वयो	वियो (गतः)

---

1. ' Siraiki (Sireli) Sindhi differs from the Standard Sindhi having a more clearly articulated pronunciation and slightly different vocabulary '.

(Linguistic Survey of India)

vol. viii. Part. 1, pp. 140.

परंतु उ. सिं. में 'जादे' का द. सिं. में 'जेदे' और 'जेदाँहँ' तथा 'कादे' का 'केदाँहँ' रूप होते हैं।

वचन भेद

उत्तर और दक्षिण सिंधुमें शब्दोंका एकवचन प्रायः समान रहता है केवल ब. व, में भेद देखने में आता है।

जैसे :—

ए. व.	ब. व. उ. सिं.	ब. व. द. सिं.
खारक	खारकाँ	खारकूँ
जाल	जालाँ	जालूँ
टोपी	टोपियाँ	टोपियूँ
दींहुँ	दींहाँ (लासी सिं.)	दींहँ

सर्वनाम

सिराइकी सिंधीमें 'माँ' (मैं) शब्दके प्रथमा और तृतीया के ए. व. का रूप 'माँ' ही रहता है, परंतु द. सिं. में तृ. ए. व. का रूप 'मूँ' होता है। उ. सिं. में इसी शब्दके प्र. ब. व. में 'असाँ' और द. सि. में 'असीं' रूप होता है। इस प्रकार उ. सि. में 'तूँ' के प्र. ब. व. का 'तव्हाँ' और द. सिं. में 'तव्हीं' रूप होता है।

क्रियापद

सिराइकीमें प्राय: उ. पु. के ए. व. में संस्कृतका 'मि' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। जैसे:—

आयुमि (सं. आयाम्)= मैं आया।

चवँदोमामि (वदिष्यामि)= कहूँगा।

होमि, हुयुमि (अभवम्)= मैं हुआ। आदि।

परंतु द. सिं. में 'मि' के स्थानपर प्राय: 'सि' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—

आयुसि

चवँदोसाँसि (यहाँ 'मामि'का प्रथम 'म' अनुनासिक में बदल गया है)

होसि, हुयुसि, आदि।

किंतु कहीं कहीं वैकाल्पिक रूपसे 'मि' का प्रयोगभी देखा गया है। जैसे :—

लिख्यो   लिख्युमि   (अलिखम्)= मैंने लिखा।

पढ़ियो   पढ़ियुमि   (अपठम्)= मैंने पढ़ा।

खाधो   खाधुमि   (अखादम्)= मैंने खाया। आदि।

सिराइकीमें भविष्यत्कालके उ० पु० ब० व० में 'सेँ' का प्रयोग होता है। जैसे :—

इंदोसेँ, चवँदासेँ, कँदासेँ आदि।

किन्तु द. सिं० में इसी स्थानपर 'सीँ' और 'सूँ' का प्रयोग होता है। जैसे:—

ईँदासीँ	ईँदासूँ	(हम आएँगे)।
चवँदासीँ	चवँदासूँ	(हम कहेंगे)।
कँदासीँ	कँदासूँ	(हम करेंगे), आदि।

सिराइकी में विध्यर्थक 'करणु' (कृ) धातु के उ. पु. ए. व. में 'र' का लोप हो जाता है। जैसे- 'कयाँ'। किन्तु द. सिं. में इसका रूप होता है 'करियाँ' (मैं करूँ)।

सिराइकीमें संयुक्त-क्रियाओंमें जहाँ 'पियो' का प्रयोग होता है वहाँ द. सिं० में उसका 'थो' रूप मिलता है। जैसे:—

उ. सिं०	द० सिं०
सेखारियाँ पियो	सेखारियाँ थो (सिखाता हूँ)।
खावाँ पियो	खाँ थो (खाता हूँ)।

संस्कृत भाषाके कृदन्तके 'क्त' प्रत्ययसे मिलता-जुलता 'ता' प्रत्यय सिराइकीमें मिलता है। जैसे - पीता (पीतं) कीता (कृतं) सीता (स्यूत्तं) आदि। परंतु द. सिं. में इसके लिए 'तो', 'यो' और 'ओ' प्रत्यय मिलते हैं। जैसे - पीतो, (पीतं) जातो (ज्ञातं), सिबियो (स्यूतं), आयो (आयातः), वियो (वियातः), वेठो (विश् धातुसे, बैठा)

कुछ विशिष्ट शब्दः—

बातचीत करते समय मराठी में जैसे 'बर'का बार-बार प्रयोग किया जाता है, और अंग्रेजी में जैसे ' I see ' का व्यवहार किया जाता है इसी प्रकार उ. सिं. में भी 'मातो' शब्दका प्रचुर प्रयोग होता है। जैसे ''मातो, केदाँ पियो वञे ?'' (भाओ ! कहाँ जा रहे हो ?)- 'मातो, हितिड़े अचु नी....ईँ ' –(भाई ! यहाँ आओ न ?) 'मातो, गाल्हाएँ बि न पियो ?' (भाई। बातभी नहीं करते हो ?) इत्यादि।

यह 'मातो' शब्द संस्कृतके 'मया उक्तं' (प्रा. मआ+उदो, मा+उदो=मातो) का रूप प्रतीत होता है।

इस प्रदेशके बलोच मुसलमान जब आपसमें मिलते हैं, तब ' भोतार ' इस संबोधन शब्दसे कुशल-प्रश्न पूछते हैं। यह संस्कृतके ' भट्टार, (राजा, स्वामी) वा 'भर्तार' (स्वामी, साईँ) का रूप है। सिंधीमें 'पति' को 'भतार' (भर्त्तार, भृ धातुसे) भी कहते हैं। कारण वह पालन-पोषण करता है। घरका स्वामी कभी अपने गौ आदि पशुओंको हृष्ट-पुष्ट देखकर पीठपर हाथ फेरते हुए आनंद-विभोर होकर 'भटारों' (पु.) और 'भटारी' (स्त्री.) कहने लगता है।

उत्तर सिंधुमें सवारी की घोड़ा–गाड़ी को 'बगी' कहते हैं। मागधी प्रा. में संख्या वाचक 'द्वि' का रूप 'ब' होता है और सिंधी में भी इसी अर्थ में 'ब' का प्रयोग है। 'गी' शब्द 'गौ' का विकृत

रूप है। इसप्रकार 'बगी' का अर्थ होगा 'दो बैलोंसे जुती हुई सवारीकी गाड़ी'। बादमें यह शब्द घोड़ा-गाड़ी के लिये रूढ़ हो गया।

सिंधु के छोटे गाँवोंमें आज भी यह रिवाज है कि धानराशि तोलने के लिये एक प्रकारके लकड़ी के बने हुए मापक-पात्र व्यवहार में लाते हैं। आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रंथ शार्ङ्गधर-संहिता, खं. १. अ. १. श्लो. ३५, में भी तोल के लिये लकड़ी आदिके मापक-पात्र-के निर्माण करनेका वर्णन आया है। सिंधुमें एक पावभर वस्तु तो-लने के पात्रको 'चोथाई' कहते हैं। चार चोथाई की एक पाटी होती है, और चार पाटियों का एक 'टोयो' होता है। सिराइको में 'पाटो' को 'पणिकी' और 'टोयो' को 'टोको' कहते हैं।

उ. सिं. मे कोटके पाकेटको 'गोधो' या 'गीदो' और द. सिं. में 'खीशो' कहते हैं। मकानके खुले हुए चौतरे को उ. सिं. में कोठो द. सिं. में 'खुदु' कहते हैं। प्राणिके मस्तक के ऊपरके भागको 'टिपिरि' कहते हैं। मकानके छज्जे को उ. सिं. में 'वधाविरो' (वृध्-धातुसे) कहते हैं, कारण वह मकानसे बाहरकी और बढ़ा हुआ भाग होता है। द. सिं. में इसको छजहिरी (हिं. छज्जा) कहा जाता है। सिंधुके सक्खर-जिलाके उबावड़ो तथा मीरपुरमाथेलो गाँवकी तरफ कौवेको 'काँगिरो' और द. सिं. में 'काउँ' कहते हैं। शरीर पोंछनेके वस्त्रको उ. सिं. में 'पोतिरो' और द. सिं. में 'अंगोछो' कहते हैं। ओसको उ. सिं. में 'टेर' तथा द. सिं. में माक कहते हैं।

विचोली सिन्धी

विचोलो का अर्थ है विचवारो=बीचवाला भाग। वहाँ जो सिंधी बोली जाती है उसको विचोली-सिंधी कहते हैं। इस भू-भागके बीचमें सिंधु-नदके आ जानेसे पूर्व और पश्चिम-भेदसे इसके दो भाग बन गये हैं। पूर्व-तट वाले भागको अर्थात् संपूर्ण नवाबशाह जिलाको 'साहिती' कहते हैं। कारण यहांकी सिंधी खड़ी-भाषा है, साहित्यमें प्रयुक्त होती है। इसालिये इस भाषा-भाषी प्रदेशका नाम 'साहिती' है। इसमें 'लाड़' को छोडकर बाकी हैदराबाद जिलामें तथा पश्चिम-तट वाले मध्य-भू-भागमें भी यही भाषा चलती है।

सिंधुमें अंग्रेजोंके आरंभिक शासन कालमें अर्थात् १८४३ ई. में पाठशालाओंके पाठ्यग्रंथ तथा लिपिमें परिवर्तन और संशोधन (जिसको हम बिगाड़ ही मानते हैं) करनेका प्रश्न उठा। उस समय संपूर्ण सिंधुकी राजधानी हैदराबाद होनेसे वहांके लोगोंका निर्णयही सर्व-मान्य हुआ। यही कारण है, जो वहाँकी भाषा आज तक साहित्य पदपर आरूढ़ है। फिरभी हैदराबाद और नवाबशाह जिलाकी सिंधीमें विशेष भेद नहीं है। केवल कहीं अनुनासिक का प्रयोग होता है और कहीं नहीं होता। यह बात नीचेके कोष्टकसे स्पष्ट होगी :—

साहिती	हैदराबादी
पहिरो	पहियौं (पहिला)
मुहिँ जो	मुँहिँ जो (मेरा)
तुहिँ जो	तुँहिँ जो (तेरा)
काहिँ जो	काँहिँ जो (किसका)
पाहेँ जो	पाँहिँ जो (अपना)

साहितीमें 'ह' का प्रयोग कम होता है। जैसे ये कहेंगे 'पिणसि' तो हैदराबाद वाले कहेंगे 'पिण्हासि' (उसका पिता)।

कहीं कहीं वाक्य योजनामें भी थोड़ा-सा अंतर देखा जाता है। जैसे- साहितीमें कहेंगे 'चयो अथसि' तो हैदराबाद वाले कहेंगे चयो-अथाईं वा 'चयोथाईं' (=उसने कहा है)।

हैदराबाद वाले बोलने में 'ड़' और 'र' का भेद कम रखते हैं। जैसे 'कपिड़ा' को कहेंगे 'कपिरो' और 'घोड़ो' को कहेंगे 'घोरो'।

साहितीमें प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दोंकी सूची नीचे दी जाती है:—

साहिती	हैदराबादी
उकरस	गरिमी
राङो	लेपो (लीपा)
वघणु-वघिणो	लगिलगो (करछी)
दोकरु	पैसो (एक पैसा)
खोड़	झझो, घणो (बहुत)
भाऊ	भाउ (भाई, भ्राता)

विचोली-सिन्धी के हिन्दी- शब्दानुवाद सहित कुछ नमूने :-

-जिला हैदराबाद-सिन्धुकी साहित्यिक सिन्धी भाषाका नमूना-

संख्या १—

हिकिड़े माण्हुअ-खे ब पुट ु हुआ । तिनि-माँ नंढे पिउ-खे चयो,
एक मनुष्य को दो पुत्र थे । उन मेंसे छोटेने पिता को कहा
ए बाबा! माल-माँ जेको भाङो मुँहिँजे हिसे अचे, सो मूँ-खे
हे पिता! सामग्री-मेंसे जो भाग मेरे हिस्सेमें आवे, वह मुझ-को
खणी डे । जहिँते हुन मालु बिन्ही-खे विराहे डिनो । थोरनि
ला दो । जिस-पर उसने सामग्री (माल) दोनों-को बाँट दी । थोड़े
डीहँनि-खाँ पोइ संदुसि ु नंढो पुट्ठ ु समु-की हाथिकरे हिकिड़ दूराहें
दिनों- के बाद उसका छोटा पुत्र सबकुछ हस्तगतकर एक दूर
डेह डे उथी हलिओ, जिते पँहिँजो मालु ु अझलाइअ-मे विञायाँईं ।
देश को उठकर चला, जहाँ अपना माल व्यर्थकाम-में गँवाया ।
सभि खपाइण-खाँ पोइ ु इतिफाकाँ उन्हे डेह-में डाढो डुकरु ु अची
सब खलासकरने के बाद इत्तफाकसे उस देश-मे बहुत दुष्काल आकर
पिओ । जँहिँ-करे हो परवासि थिअण लगो । (पाण-खे तंग हाल-में
पड़ा । जिस-कारण वह परवश होने लगा । (अपने-को तंग हालत-में
डिसी) उन्हे डेहजे हिकिड़े रहंदड़-खे जीअं तीअं करे वञी चंबिड़िओ,
देख) उस देशके एक रहवासी-को जैसे-तैसे कर जा(कर) चिपटा,

जँहिँ पँहिँजे बनिअ-में सुअर चारण-लेइ मोकिलिउसि । अइँ इएँ
जिसने अपने खेत में शूकर चराने के लिए भेजा। और इस
थ-भायाँई त जेके छिलँ सुअर था-खाइनि, से जेकर माँ
प्रकार समझने लगा कि जो छिलके शूकर खाते हैं, वे यदि मैं
खाई पँहिँजो पेटु भर्याँ, पर खेसि कँहि की-बि की-न
खा(कर) अपना पेट भरूँ, पर उसको किसीने कुछ भी-न
डिनो। इते समुझ-में अची चवण लगो त मुँहिँजे पिउ-वटि
दिया। इसपर समझ-में आकर बोलने लगा कि मेरे पिताके-पास
केतिरनि-ई पोरिहतनि-खे झझी मानी पेई-मिले, अइँ आऊँ-ई
कितने-ही श्रमिकों-को बहुत रोटी मिलती है, और मैं-ही
हिति बुख पिओ-मराँ। सो आऊँ उथी पँहिँजे पिउ-वटि वञी
यहाँ भूख मर रहा हूँ। सो मैं उठ अपने पिता-के पास जाकर
चवंदोसाँसि, ए बाबा! मूँ आसिमान-जो अइँ तुँहिँजो गुनाहु कयो
बोलूँगा, हे पिता! मैंने आकाश-का और तुम्हारा दोष किया
आहे, हाणे इन्हे लाइकु न आहियाँ जो वरी तुँहिँजो पुटु चवायाँ,
है, अब इस योग्य नहीं हूँ जो फिर तुम्हारा पुत्र कहाऊँ
सो मूँ-खे पँहिँजे पोरिहतनि-माँ हिकिड़े जहिड़ो करे जाणु।
सो मुझ-को अपने श्रमिकों-मेंसे एक सदृश्य कर समझो।
(इएँ रिथे) उथी पँहिँजें पिउ-डे हलिओ। अञा परे-ई हो त
(ऐसा विचारकर) उठकर अपने पिताकी-ओर चला। अभी दूर-ही था तो

उन्हे-खे डिसी पिणासि-खे डाढी बाझ आई, जँहिं डोड़ी भाकुरु
उस-को देख उसके पिता-को बहुत दया आई, जिसने दौड़कर अलिंगन

पाए खेसि चुमिओ। तँहिं-ते पुटसि चयुसि ए बाबा। मूँ आसिमान-जो
कर उसको चूमा। उसपर पुत्रने कहा हे पिता! मैंने आकाश-का

अइँ तुँहिं-जो गुनाहु कयो आहे, हाणे इन्हे लाइकु न आहियाँ जो
और तुम्हा-रा अपराध किया है, अब इस योग्य नहीं हूँ जो

वरी तुँहिं-जो पुटु चवायाँ। पर पिणसि, पाँहिंजे बान्हनि-खे चयो
फिर तुम्हारा पुत्र कहाऊँ। पर पिताने अपने नौकरों-को कहा

त, उचे-खाँ उचो वगो खणी अची पहिरायोसि, अइँ हथ-में
कि, ऊँचे-से ऊँचे वस्त्र ले आकर पहिनाओ और हाथ-में

मुंडी अइँ पेरनि-में जुती पायोसि, त पोइ खाई खुशी कयूँ, छो-त
मुद्रिका और पाँवों-में जूती पहनाओ तो बादमें खाकर आनन्द करें क्योंकि

हिउ मुँहिं-जो पुटु मुओ हो, सो हाणे जीओ आहे। अइँ गुमु थी
यह मेरा पुत्र मरा था वह अब जीवित हुआ है। और गुम हो

विओ-हो सो हाणे लधो-आहे। तडहीं उहे खुशी करण लगा।
गया-था वह अब मिला है। तब वे आनंद करने लगे।

अइँ संदुसि वडो पुटु बानिअ-माँ थी, जडहीं घर-ख वेझो आयो,
और उसका बड़ा पुत्र खेती-से होकर, जब घर के पास आया,

तडहीं गाइण अइँ नाच-जो परिलाउ कन-ते पिउसि। सो
तब गायन और नाचने-की आवाज कान-पर पड़ी। अतः

हिकिड़े बान्हे-खे कोठे पुछियाँईं त हिउ छा पिओ थिए ?
एक नौकर–को बुला(कर) पूछा तो यह क्या रहा है हो ?
(हो रहा है?)
चयाँईंसि त तुहिंजो भाउ आयो-आहे, अइँ पिण्हे महिमानी
बोला कि तुम्हारा भाई आया-है. और पिताने आतिथ्य
कई-आहे, इन्हे-लाइ जो खेसि चङो-भलो लधो-अथासि। ही
किया है. इस-लिए जो उसको स्वस्थ प्राप्त-किया है। यह
बुधी काविड़िजो अंदरि वञणु चङो न भायाँईं तडहीं पिणसि
सुन क्रुद्ध हो (उसने) अंदर जाना ठीक न समझा तब पिताने
बाहिरि अची खेसि समुझायो। पर पिउ-खे वरंदीअ-में चयाँईं
बाहर आ(कर) उसको समझाया। पर पिता-से उत्तर– में बोला
जो, डिसु आऊँ केतिरनि वरिहनि-खाँ तुँहिंजी-ई खिजिमत
कि देखो मैं कितने वर्षों – से तुम्हारी – ही सेवा
पिओ कयाँ अइँ कडहीं तुँहिं-जे हुकिम-जे उबताड़ि न हलिओ
रहाहूँ कर, और कभी -तुम्हारी आज्ञा-के विपरीत न चला
आहियाँ, तडहीं बि मूँ-खे कडहीं छेलो न डिनुइ, जो आऊँ
हूँ, तब भी मुझ-को कभी अजापुत्र न दिया, जो मैं
(कुही) पाँहिंजे दोसितानि-साँ गडु खुशी कयाँ; पर हिन पाँहिंजे
(वधकर) अपने मित्रों - के साथ आनन्द करूँ; पर इस अपने

पुट - जे अचण ते, जँहिँ तुँहिँ - जो मालु कञिरिउनि - में
पुत्र –के आने – पर, जिसने तुम्हारा माल वेश्याओं – में
विञायो, तँहिँ - लाइ तो वडो महिमानी कई । तँहि - ते पिणासि
गँवाया, उसके–लिए तुमने बड़ा आतिथ्य किया । उस – पर पिता
चयुसिः– " ए बचा ! तूँ त हमेश मूँ - वटि - ई आहीँ अइँ जेकी
बोलाः— ' ए तात ! तुम तो हमेशा मेरे–पास– ही हो और जो भी
अथमि सो सभि तुँहिँ - जो - ई आहे; पर खुशी करणु अइँ सरहो
(मेरे पास) है वह सब तुम्हारा ही है; पर आनंद करना और प्रसन्न
थिअणु असाँ - ते वाजिबु हो; छो जो हिउ तुँहिँ जो भाउ मुओ
होना हम–पर ठीक था, क्यों–कि यह तुम्हारा भाई मरा
हो, सो हाणे जीओ आहे; अइँ गुमु थी विओ - हो सो हाणे
था, वह अब जीवित हुआ है; और गुम हो गया–था वह अब
लधो आहे ।
मिला है । (लिं० स० इं०, भा० ८,)

संख्या २—

आऊँ तपदार मुनिशी सोभराज - वटि नौकरु होसि । मोरे - में
मैं तपदार मुंशी सोभराज के पास नौकर था । मोरे –में
अटिकल ब महिना थीँदा जो नौकरी छडी डिनीअमि अइँ घोड़ो
लगभग दो महीने हुए जो नौकरी छोड़ दी और घोड़ा
जेको मुँहिँ -जे सुवारीअ - जो हो सो चोरी थी विओ । पोइ अटिकल
जो मेरी सवारी – का था वह चोरी हो गया । बादमें लगभग

पंद्रहँ सोरहँ डीँहँ थीँदा जो मोरे-खाँ ठारूशाह विउसि-थे,
पंद्रह सोलह दिन हुए जो मोरे - से ठारूशाह जा रहा था.
बाकी अधु पहिरु सिजु हो त डिठुमि त लेखुअ वाणिए - जो खूहु,
बाकी आधा प्रहर सूर्य था तो देखा कि लेखू बनिये—का कूँआ
ठारूशाह-खाँ मइलु पंधु ओरे आहे, उते हिकु माण्हूँ घोड़ो काहे
ठारूशाह से मैल फासला नजदीक है, वहाँ एक आदमी घोड़ा ले आ
पे-आयो सो मूँ डिठो। उन-खाँ पुछिउमि त केरु आहीँ? चयाई तँ
रहा था वह मैंने देखा। उससे मैंने पूछा कि कौन हो? उसने कहा
माछी आहियाँ नालो अथमि रबू पुटु ढाँदे-जो, वेठलु ठारूशाह-जो।
माछी हूँ नाम है रबू पुत्र ढाँदे-का, निवासी ठारूशाह-का।
पोइ मूँ सुञातो जो अगु मुँहिँ-जो वाकिफ़ु हो। पाण घोड़े-ते चाड़ि-
बादमें मैंने पहचाना जो पहले मेरी पहचानवाला था। स्वयं घोड़ेपर चढ़ा
हिअलु हो। मूँ-खे डिसी घोड़े—ताँ ल-थो अइँ मूँ-खे चयाईँ-त
हुआ था। मुझको देखकर घोड़े पर से उतरा और मुझसे बोला कि
घोड़ो खपेई त काहे वञु। मूँ चयुसि त चङो मूँ-खे डे। घोड़ो
घोड़ा चाहिए तो ले जाओ। मैंने कहा कि अच्छा मुझ को दो। घोड़ा
रंग जो कुमेलु उमिरि चौसाल हो। पोइ घोड़ो वठी उन-ते
रंग-का कुमेल उम्र चार साल(का)था। बादमें घोड़ा ले(कर)उस-पर
चाड़िही आयुसि मोरे अइँ रबू विओ हलिओ। मूँ-खे चयाँईँत पइसा
चढ़(कर) मैं आया मोरे और रबू चला गया। मुझ-से बोला कि पैसा

छवीह रुपया वठँदोसाँइ । मूँ चयुसि त हीअँर मूँ-वटि के-न आहि-
छवीस रुपये लूँगा । मैंने कहा कि अब मेरे-पास नहीं हैं
नि । जडहीँ थींदमि तडहीँ डीँदुसि । उन्हिअ वकिति बियो
जब होंगे तब दूँगा । उस समय दूसरा
माण्हू-को को-न हो । इहा राति मोरे टिकिडसि, बी राति
आदमी कोई नहीं था । यह रात मोरे में ठहरा. दूसरी रात
क़ाज़ीअ-जे गोठि मुसाफ़िरखाने-में टिकिडासि, चोथे डीँहँ टंड
काजी — के गांव में मुसाफिरखाना में ठहरा, चौथे दिन टंडा
अलह्यार-में पहुतुसि अइँ अची मुनिशी ठारूमल तपदार-वटि
अलहयार — में पहुँचा और आकर मुंशी ठारूमल तपदारके-पास
कोटारु बीठुसि । घोड़ो मूँ-साँ हो अइँ टिओँ डीँहुँ उहो घोड़ो
कोटवाल हो ठहरा । घोड़ा मेरे—साथ था और तीन दिन हुए वह घोड़ा
टुकनिचोरे मुनिशीअ-जे पटेवाले खे डिनो अथमि गाहजे खणण
टीका लगाने वाले मुंशी -के पटेवाले-को दिया है घास उठानेके
लाइ, जो उन्हे-वटि आहे । अइँ अजु सुबूह जो मूँ खे सूबेदार
लिए, जो उसके—पास है । और आज सुबह को मुझको सूबेदारने
पकिड़िओ आहे त तो वारो घोड़ो चोरीअ जो आहे । अइँ सूबेदार
पकड़ा है कि तुम्हारा घोड़ा चोरीका है । और सूबेदारने
घोड़ो को न घुरायो । अञा घोड़ो उन्हे पटेवाले वटि आहे ॥
घोड़ा नहीं मंगाया । अबतक घोड़ा उस पटेवाले—के पास है ॥

(लिं० स० इं०, भा० ८)

खैरपूर रिसायत (सिन्ध) की साहित्यिक भाषा का नमूना :-

हिकिड़ो माण्हूँ पहँजो घणो॑ मालु हिकिड़े वापारीअ वटि
एक आदमी अपना बहुत माल एक व्यापारी के पास
अमानत रखी मुसाफ़िरीअ ते विओ। जडहि॑ हू मोटी आयो तडहि॑
अमानत रख मुसफिरी पर गया। जब वह लौट आया तब
वापारीअ खाँ मालु घुरिआई॑ पर वापारीअ इन्कारु कयो अइँ
व्यापारीसे माल मांगा परन्तु व्यापारीने इन्कार किया और
क़समु खणी विओ त, "तो मूँ-खे की-बि की-न डिनो
शपथ ली कि "तुमने मुझे कुछ-भी नहीं-दिया
हो"। उन्हे माण्हूँअ क़ाज़ीअ खे वञी दाँह डिनी त "फलाणे वापारी-
था"। उस आदमीने काजीसे जाकर फरियाद की कि "अमुक व्यापारी
अखे पँहि॑-जो मालु डिनो होमिं, जो हू हाणे उन्हिअखाँ इन्कारु
को अपना माल दिया था, जो वह अब उससे इन्कार
थो करे"। क़ाज़ीअ सोचखाँ पोइ हुनखे चिओ त, बिअे कँहि॑
करता है"। काजीने विचारके बाद उससे कहा कि दूसरे किसी
माण्हूअखे न बुधाइ त फलाणो वापारी तो-खे तुँहि-जो मालु मोटाए
आदमी को न बताओ कि अमुक व्यापारी तुम को तुम्हारा माल लौटा
न थो डिए। आऊँ बंदोबस्तु कयाँ थो। क़ाज़ीअ वापारी अखे घुरायो
नहीं देता। मैं प्रबन्ध करता हूँ। काजीने व्यापारी को बुलाया,

अइँ हुनखे चिआईं, मूँखे कमु तमामु घणों थिओ आहे अइँ
और उससे बोला, मुझको काम बहुत अधिक हुआ है और
आऊँ हिकिड़ो पूरो करे न थो- सघाँ। तूँ ईमान्दारु माण्हूँ आहीं;
मैं अकेला पूरा कर नहीं सकता। तू ईमानदार आदमी है.
तँहिं करे बादिशाहजे हुकुम-मूजिबि तो खे नाइबु काजी मुकरिरु
इसलिये बादशाह के हुक्म-अनुसार तुम-को नाइब काजी मुकर्रर
कयों-थो। वापारीअ कबूल कियो, अइँ घणों खुशि थिओ, हू
करता-हूँ। व्यापारीने स्वीकार किया, और बहुत खुश हुआ, वह
घरि विओ तँहिं खाँ पोइ काजी उन्हे-माण्हूअ-खे चिओ त
घर गया उस-के बाद काजीने उस आदमी से कहा कि,
"तूँ वञी वापारीअ खाँ पाँहिं-जो मालु घुरु अइँ हू तो-खे
"तू जाकर व्यापारी से अपना माल मांगो और वह तुमको
डीन्दो।" उहो माण्हू वापारीअ वटि आयो। वापारीअ हुन
देगा।" वह आदमी व्यापारी के पास आया। व्यापारीने उस
खे डिसन्दे चिओ-त चङो थिओ जो तूँ आएँ। मूँ वटि तुहुँ-जो
को देखते बोला-कि ठीक हुआ जो तू आया। मेरे पास तुम्हारा
मालु आहे, जो मूँ खाँ विसरी विओ हो। हाणे उहो मालु वठु।
माल है, जो मुझसे बिसर गया था। अब वह माल ले।
नेठि हुन उहो मालु उन्हिअ माण्हूँअ खे मोटाए डिनो।
अन्तमें उसने वह माल उस मनुष्य को लौटा दिया।
बिए दींहँ वापारी क़ाज़ीअ वटि विओ क़ाज़ीअ हुन-खे चिओ त,
दूसरे दिन व्यापारी काजी के पास गया काजी उस-को बोला कि

बादशाह जो इरादो आहे त, तो-खे वडो उहदो डिए, तँहिँ
बादशाह का इरादा है कि, तुम-को बड़ा पद दे, उस
करे शुक्राना खुदाइअ जा करि, जो तो-खे चङी नउकरी मिलन्दी
लिए शुक्र ईश्वर का करो, जो तुम-को अच्छी नौकरी मिलेगी
अइँ आऊँ नाइबु क़ाज़ी बिओ मुकररु कन्दुसि ।
और मैं नाइब काजी दूसरा नियत करूंगा ।

मतलबु गाल्हि-जो त क़ाज़ीअ वापारीअ खे हिन दिलासे कढी
तात्पर्य बातका कि काजीने व्यापारी को इस आश्वासन से निकाल
छडिओ । अइँ उन्हिअ माणहूँअ खे इन्हीअ तज्वीज़-साँ विअलु
दिया। और उस आदमी को इस युक्ति-से गया
मालु वठाए डिनाइँ ।
माल दिला दिया। (लिं० स० इ०, भा० ८)

लाड़ी सिंधी

लाड़ी - सिंधी को सुनकर शेष सिंधु के लोग उसका उपहास करते हैं। यहाँ की भाषा को लोग 'कच्ची' अर्थात् अपक्व मानते हैं। पाकिस्तान होने से सिंधु छोडने के बाद माड़वारी, और गुजराती, भाषाओं के सुननेका विशेष अवसर मिलने के कारण मालूम हुआ कि लाड़ के सीमावर्ती इन प्रदेशोंकी भाषाओं का एक दूसरेपर विशेष प्रभाव हुआ है। यह बात आगे चलकर स्पष्ट करेंगें।

भाषा - तत्वज्ञ डॉ. ग्रियर्सन् का कहना है कि[1] "दारदिक-भाषाओं में घ - झ - ढ - ध और भ के स्थानपर ग - ज - ड - द और ब का प्रयोग होता है।

यही हाल हमारी लाड़ीका भी है। इससे कहा जा सकता है कि इस प्रदेश की भाषा पर दारदिक अर्थात् पैशाची का स्पष्ट प्रभाव है। यहबात नीचे के कोष्टकसे स्पष्ट होगी:—

	विचोली	लाड़ी
'घ' का 'ग' होना:—	डिघो	डिगो (दीर्घ)
	घरु	गरु (गृहं)
	घोड़ो	गोरो (घोटक:)
'झ' का 'ज' ,,	झझो	जजो (बहुत)
	विझोसि	विजोसि (डालो)

१. लिं० स० इ० जिल्द. ८ भा० १, पृ० १७०–१७१

	विचोली	लाड़ी
'ढ' का 'ड' ,,	कढु	कड्डु (मराठी-काढा, हिं–निकालो)
	नंढो	नंडो (गुज–नानो, हिं–नन्हा)
	रेढारु	रेड्डारु (भेड़ चराने वाला)
'ढ' का 'र' ,,	चढ़णु	चरणु (चढ़ना)
'ध' का 'द' होना:–	धीअ	दी (दुहेता)
	लधो	लदो (लब्ध)
	पंधु	पंदु (पैदल चलना)
'भ' का 'ब' ,,	भाऊ	बा (भाई)
	भरियो	बरियो (भरो)
	भेणु	बेण (गु०बेन)
	भूत	बूत (भूत–प्रेत)

ऊपरकी सूचीसे स्पष्ट हो गया कि लाड़ी सिंधीमें 'ह' मिश्रित वर्णोंको किस प्रकारसे नरम किया गया है। न केवल इतना ही, परंतु जिन शब्दोंमें स्पष्ट रूपसे 'ह' वर्ण विद्यमान है वहाँ उसका भी लोप किया गया है। इसके लिये अधोलिखित उदाहरण लीजिये:—

	विचोली	लाड़ी.
'ण्ह' का 'ण' शेष रहना–	माण्हूं	माणू (गु०माणस)

	विचोली	लाड़ी.
	पिणेहँ	पिणे (तुम्हारा पिता)
'ह्र' का 'र' ,, ,,	वर्ह्य	वर्य, वर (वर्ष)
'व्ह' का 'व' ,, ,,	तव्हीँ	तवीँ (तुमलोग)
	अव्हीँ	अवी और अईँ

"अईँ जे वरनि वारियूँ सरित्यूँ सधर्यूं"
(तुप जो पति वाली सहलियाँ स्पर्धाशील)

शाह, ससुई (आबिरी) ४-१०॥

आह्याँ	आयाँ (मैं हूँ)
बाहिरि	बारि (बाहर)

टहिलरामु—टेलरामु (पुरुष का नाम)
रहिमत अल्लाह-रेमत अल्ला (,, ,,)

इसप्रकार शब्दोंसे 'ह' वर्ण के लोप करनेकी प्रवृत्ति गुजरातीमें भी है। वे भी 'अहमदाबाद' को 'अमदाबाद' लिखते हैं। वास्तव में प्राकृत तथा देशी शब्दोंमें 'ह' का प्राय: कम उच्चार होता है।

लाड़ी सिंधीमें जहाँ 'ह' का लोप होता है—वहाँ अव्यवहित स्वरों में संधि भी हो जाती है। जैसे:—

विचोली	लाड़ी,
पहुतो	पोतो (पह् + उतो, प + उतो = पोतो)
चहुट्यो	चोट्यो, चोतो (चह् + उट्यो, च + उट्यो = चोट्यो),

शाह के रसालो नामक काव्यमें 'चोट्यो' का 'चोतो' भी रूप मिलता है। जैसे:=

" घिरी घड़ो हथि करे चोलि बधी चोतो।
(प्रवेशकर घड़ा हाथमें लेकर कमरमें बांधकर कटिवस्त्र।)
मूँ जो मनु मेहार खे पारि वञी पोतो ॥
(मेरा मन महिवाल को पार जाकर पहुँचा ॥)
शाह, सुहिणी–१।१२॥

लाड़ी सिंधीमें पदांत्य–स्वर का प्रायः लोप होता है:–

विचोली	लाड़ी
भाउ॒	बा (भाई)
आउ॒	आ (आओ)
माउ॒	मा (माता)
पीउ॒	पी (पिता)

लाड़ीमें शब्दोंको संक्षिप्त करने की विशेष प्रवृत्ति है:–

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
चवोँ सि	चोँ सि	चेंस	(उससे कहो)
खाइणु	खीणु	खेण	(खाना)
दि॒नाईँ सि	दि॒नीसि	दि॒नेस	(दिया)

विचोली सिंधीमें शब्दोंके ब. व. में प्रायः 'अनि' और 'उनि' प्रत्यय लगाया जाता है। एरंतु लाड़ीमें इनके अनेक रूप हैं। जैसे:–

विचोली	लाड़ी.	
पीउरनि	पीनि	(पिताओंने)
जालुंनि	ज़ाल्यूँ	(औरतोंने)
माण्हुनि	मारुहियेँ	(मानवोंने)

" कहिँ कहिँ मारुहियेँ पेई कल काई "
(किसी किसो मनुष्य को पड़ी सुध कोई)
शा०, सोरठ - १।१७॥

लहिरुनि	लइरिनि

" साहर संभारुँ लइरिनि लोदे न मराँ "
(प्रीतम (को) याद करते लहरों के थप्परोंसे न मरूँ।)
शा०, सुहिणी २।१०॥

सर्वनाम:—

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
अव्हाँ	आँहाँ,	आँ	(तुम लोगोंने)
माँ	आँ	आउँ	(मैं)

" आँ (=माँ) आयाँ आहाँ (=अव्हाँ) धार "
(मै हूँ तुमसे अलग)
शा०
आँ (अव्हाँ) की साथी दिठ "
(तुम (लोगोंने) कोई साथी—दखा ?)
शा० हुसेनी ४।९॥

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
अव्हीँ	अईँ		(तुमलोग)
हू	ऊ	ऊ	(वह)
उहे	उइ	—	(वे)
हिन	इनि	—	(इसने)
हुन	उनि	—	(उसने)
पहिँजो	पीँजो	पाँजो	(अपना)
पाण	पिण्ड		(स्वयं। गुज० - तथा कच्छीमें 'पोते पिण्ड')
जहिँ	जें		(गु.क. जे, हिं.जिस)
तहिँ	तें		(गु.क.ते,हि०तिस)
छा	कहृ, कोहु कुजारो	कुरो	(क्या)

"दिठे दीहँ थियामि कोहु जाणा कहिड़ा पिरीँ"।

(देखे (बहुत) दिन हो गये—क्या जानू कैसा प्रीतम (है)?)

शा. सुहिणी ९।२४॥

"कुले फाटो कंजुरो, मथो उधारो।

(कंधेसे फटा हुआ कंचुक, मस्तक नंगा)

मूँजो कुजारो भेनरु हिन भंभोर में ?॥"

(मेरा क्या बहनो! इस भंभोर (शहर) में ?॥)

शा. हुसेनी १२।४८॥

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
अहिड़ो	ईहो	एरो	(ऐसा)
जहिड़ो	जीहो	जेरो	(जैसा)
तहिड़ो	तीहो	तेरो	(तैसा)
कहिड़ो	कीहो	केरो	(कैसा)

" जीही जा तीही बानी बारोचनिजो ।
(जैसी जो तैसी दासी बारोचोंकी (बलोचिस्तान में रहनेवाले))
हुब त होत पुन्हूँअसे, मूँ कमीणी कीहो ॥
प्रेम तो स्वामी पुन्हुसे, मुझ तुच्छकी कैसी ।
शा. कोह्यारी ३।८॥

क्रियापद :—

चवनि	चूनि	चोनि	(वे कहते हैं)
रुवनि	रूनि	रोनि	(वे रोते हैं)
हुवनि, आहिनि, थियनि	हूनि		(होते हैं)
पवनि	पूनि	पोनि	(पड़ते हैं)

" अच्यो-अच्यो चूनि विहु विया त घोरिया ।
(आ आ (कर) बोलती है बैठो गये तो निछावर हूए।)
सरितिनि सांगु सुखनिसाँ, मूँ जीअँ रतु न रूनि ।
सखिओंका संग सुखोंके साथ, मुझ जैसा रक्तोंके आसूं न रोवे ।

उव मरु वेठयूँ हूनि मूँ सॉंगातू सूरथिया।
वे भले बैठी होंवे मेरे साथ दुःख हुए
सरित्यूँ ! सूरा तिनि जिअँ, कोहु थियूँ पथर पूनि ॥"
(हे सखिओ ! दुःख उनको हृदय मे क्यो है बिस्तरपर पड़ती।)

शा. कोहयारो ५।९-१०,

पवाँ पुआँ पाँ (पड़ूँ)

"दूहीँ अँ पासे दोस्तजे, मागइ पुआँ मरी।"
(धूनीके बाजू मित्रक बिलकुल पड़ूँ मर)

शा. सुहिणी ९।८॥

विचोली	लाड़ी	कच्छी.	
दिनाईसि	दिनीसि	दिनेसि	(दिया)
खाइँणु	खीणु	खेण	(खाना)
चहुट्यो	चोट्यो		(चिपट गया)
पहुतो	पोतो		[पहुँचा]
आह्याँ	आयाँ		[मैं हूँ]
चढ़णु	चरणु		[चढना]
अचु	अचि		[आओ]
वञु	वञि		[जाओ]
मारीँदुसु	मारींदिसि		[मारेगा]
चउ	चो		[बोलो]
चयो	चो		[कहा है]

" तालिबु क़सर, सूँहसरु, रूमीअ चो आहे " ।

शा. यमन कल्याणु-५।१३॥

विचोलो	लाड़ी	कच्छी	
चवाँ	चुआँ	चाँ	[मैं कहूँ]

" चुआँ तोअँ चईज "

(कहूँ वैसे कहना)

शा. पूरब १।१॥

" चाँ क चढ़ँदियसि खटते " शा.

(कहूँ कि चढ़ूँगी खाटपर)

चवे	चे, चोई	[वह कहे]
चवनिमि	चूनिमि	[मुझे कहें]
वञु	वँउ	(जाओ)

" चूनिमि जे हेकार वँउ मोटी सुहिणी ! " । शाह.

(कहें यदि एकबार जाओ लौट सुहिणी !)

रोई	रोइ	[रोकर]

" करियो महार मलीर दे, रोइ उभी अइ चोइ । "

[करो डोरी मलीरकी ओर रो कर खडी है कहती]

शा. मारुई ३।८॥

थियनि थीनि [होवें]

" हेदा हाञा थीनि, वरी हिन भंभोर में । "

इतनी हानि होवे फिर इस भंभोर (शहर) में ।

(शाह जो रसालो)

विचोली लाड़ी

कनि करीनि (करें)

दहिशत दमु दरियाहमें, जिति करिका कुन करीनि " ।

[दहशत ताकत दरिया में जहाँ आवाज भँवर करते हैं ।]

शा. सुहिणी २।५॥

नियनि नीनि (=ले जाते हैं)

" होत, पुन्हूँ था नीनि । "

[प्यारे पुन्हूको हैं ले जाते]

शा. ससुई ।

अव्यय तथा कुछ प्रत्यय:—

अजायो जाड़ (व्यर्थ)

" जाड़ जियाँ थी जेदियूँ ! " ।

व्यर्थ जीती हूँ हे सखियों!

शा. मारुई ५।३॥

बिल्कुलु नकिणी [बिलकुल]

" आउँ निमाणी नकिणी " ।

मैं नम्र बिलकुल

(शाह जो रसालो)

मताँ मछुणि (मत, निषेधार्थक)

" मछुणि भाईँ घाटि " ।

[मत समझो कम]

शा. कल्याण २।१७॥

लाड़ी सिंधी

विचोली — लाड़ी

पुठ्याँ — पिआँ (पीछेसे)

अगे — महँद (यह काव्यमें प्रयुक्त होता है, इसका अर्थ है 'पहले'।)
माँध (यह बोलाचाल का शब्द है)।

" महँद मुहताजी करे, पुठीअ पेर खणीजि "।
[पहले लाचारीवश हो पीछे कदम उठाना]
शा. आबिरी १।१३।

अग्याँ — महँदा (=आगेसे, काव्यमें व्यवहृत)
माँधा (बोलाचालमें)

" कान्हे पुजाणी, महँदा मुन्ध ! मेहार जी "।
[नहीं (है) पहुँच आगे मुग्धे ! मेहारकी]
शा. सुहिणी ९।१६॥

खाँ — किना (क.) किना (=से, प्रत्यय)

वटि — गरि, मल (पासमें)

वटाँ — मुलाउ, मुलाँ, मुला — क. मिला (= से, उससे)

" मेंधरे मुलाउ लगुसु कानु कपारमें "।
[मेंधरे की ओरसे लगा तीर लल्लाट में]
शा. मूमल राणो ३।१६॥

" सिखो सभि सारितियूँ सिपुनिसुलाँ सीरु " ।
[सीखो सब सखियां ! सीपों से सचरित्र]
शा. मारुई ९।४॥

" हाणे किन मुला पुछाँ, प्रियनि खबिरूँ " शा.हुसेनी ६।१६॥
(अब किन से पूछूं प्रीतमकी खबर)

विचोली	लाड़ी
हुनसाँ	केणा, क. केणाँ (उनके साथ)
तोसाँ	सेणाँ (तुम्हारे साथ)

" कुह कयाँ केणाँ मुहिँ जो साहु वियो सेणाँ "
(क्या करूं उनसे मेरा श्वास गया तुम्हारे साथ)
शाह जो रसालो

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
खे	कुण	के	(=को, प्रत्यय)
मुखे	कुणम	मुके	(मुझको)
तोखे	कुणइ	तोके	(तुझको)
हुनखे } खेसि }	कुणस कणासि		(उसको)

" केरि बांभण किनजी, केर जाणे कणासि " ।
(कौन ब्राह्मणी किन की, कौन जानें उसको)
शा.

खेनि	कुणनि (उनको)
हुननिखे	"
जेकदहिँ	जेकस (यदि)

" जेकस तन वटाउ ससुई सूर पिराइया "
(यदि उन से ससुईने दुःख प्राप्त किए)
शा. देसी ५।१॥

बिचोली	लाड़ी
दाँ वाटि तरफि	मणे (तरफ)

" हलन्दे हाड़िहो मणे करणु कोह पियामि "
(चलते (हुए) पर्वतकी तरफ करने कोस पड़े)
शा. मैजुरी ३।१॥

जिताँ	जिआँ, क. जिता (= यतः)
तिताँ	तिआँ, क. तिता (= ततः)
किथाँ	किआँ, क. किता (= कुतः)

" किआँ सिखियँ सुपिरीँ कासाइको कारि "
(कहाँसे सीखा प्रीतम (तुमने) कसाई का काम)
शा. बरूव सिंधो ३।११॥

हितांईँ हिआईं (इतः)
" अल्लाहजी आस करे हलियो हिआईँ "
ईश्वर की आशा (रख) कर चला यहाँसे
शा. सोरठु १।१॥

बिचोली	लाड़ी	कच्छी
तहिँ खाँ पोइ	तिहाँ पोइ	तिआँ पोइ (= तस्मात्परं)

" तिहाँ पोइ सुजनि वाधायूँ विसाल जूँ "

(उसके बाद सुनने में आवें वधाइयाँ मोक्षकी)

शा. सुहिणी ९।७॥

विचोली	लाड़ी	कच्छी
जहिँ लाइ	जेलाँह	जेलाँ (= यस्य कृते)

" जेलाँह बध्यासि बोल "

(जिसके लिए बंधी रही वचनमें

शा. सुहिणी ३।१७ ॥

तहिँ लाइ	तेलाँह तेलाँ	(= तत्कृते)

" तेलाँही तरी मुहुँ खण्यो मोट्यो वञाँ "

उसके लिए तैरकर मुख लेकर लौट जाऊँ

शा. सुहिणी ९।८ ॥

" जलाँ मुहिब मिठोमि, तलाँ छुलँ करियाँ छपराँ "

(जिस (मुझ) के लिए प्रेम मीठा है, उस लिए अभियान करूँ पर्वतपर)

शा. आबिरी २।६ ॥

(विशेषण)

विचोली	लाड़ी	
तहिड़ो	तिहो	(= तैसा, वैसा)
जहिड़ो	जिहो	(= जैसा)
काहिड़ो	किहो	(= कैसा)

"तहिँ जिहो ई नाइ को"
उसके जैसा नहीं है कोई
शा. सोरठ ३।३॥

"वठी मुहुँ किहो वञा वतन सामिहँ" शाह.
(लेकर मुख कैसा जाऊँ देशकी ओर)

लाड़ीमें कृदन्त पदके अंतमें 'आँ' जोड़ना एक विशेष बात है।
जैसे—

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
दिठो	दिठियाँ		(दृष्टः)
चयो	चियाँ	च्यो	(चयो + आँ उक्तम्)

"दिठियाँ जे बरोच मूँ जीअँ होत अख्युनिसे"
देखतीं यदि बलोच (को) मेरे समान प्रीतमको नेत्रोंसे
मूखे चिआँ लोच, पाणाँ पेठ्यूँ छिपिड़िये"
(मुझको बोला विचारो, स्वयं गईं घरमें)
शा. हुसेनि १२।१॥

लाड़ीमें कई ऐसे शब्द हैं जो सिंधुमें अन्यत्र प्रयुक्त नहीं होते।
जैसे—

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
आचारु	अथाणो	अथाणो	(अचार)
छाणणु	उपिणणु		(छानना)
कंडो	आडीको		(काँटा)

विचोली	लाड़ी	कच्छी	
दाबिलो	बिहू़गिणो		(डिब्बा)
विछूँ	भुट्टूँ	विच्छू	(बिच्छू)
जूँ	टोलिड़ा		(जू–यूका)
संभालणु	जाँकणु	संभारणु	(संभालना)
छंडणु	धंरिकणु		(छाँटना)
दालि	दारि	दार	(दाल)
अंगरिखो	करियो	किरियो	(अंगरखा)
टोलड़ा	खिरिमिटि		(शक्करकी मिठाई)
फराटो	गोलाटी		गोल चक्कर खाना
थूम	लसाणि		(लहसुन)
तियारु / हाज़ुरु	लेस		(तैयार, हाजिर)
खबर लहणु	मेट		(खबर लेना)
चङो भलो	निमिरो	निमिरा	(स्वस्थ)
उछिलिया	पुछंडिया		(पीछे फेंक दिया)

" पुन्हूअ पेका पुछंडिया "

[पुन्हूने पिताका घर छोड़दिया]

पुठियाँ	पाहूँ	पाऊँ	(पीछे)

" पाहूँ कीन दिसनि " शा०

(पीछे नहीं देखते)

विचोली	लाडी	
थोड़े वक्त ताईँ	लख सअँ / भार सेअँ	(थोड़े समयके लिये)
छाजे करे / काहिड़े हिसाब	कहिरे अखर	(किसलिये)
कमरि कसणु	लक लाँचणु	(कमर कसना)
वणिज-वापारु करणु	वेउ विहाइणु	(व्यापार करना)
वाधायूँ	खीर	(वधाई)

" वेयूँ पबि पई खीरुँ खाहोडियनिजूँ "

(गई पबमें प्रवेशकर बधाईयां पार्वत्य देशमें रहनेवालोंकी)

शा. खाहोड़ी ११३॥

लाड़ के मुसलमान जब आपसमें मिलते हैं, तब एक व्यक्ति कहता है—

" अदा ! खीरूँ " (भाई ! बधाई हो)

और दूसरा व्यक्ति कहता है—

" शुभ खीरूं " (शुभ बधाई, कल्याण हो)

यहाँ 'शुभ' शब्द शुद्ध संस्कृत का है।

अब कुछ वाक्यों के नमूने लीजियेः—

विचोली सिंधीमें कहेंगे—

" भेण ! घरजी संभाल कजइँ " (बहिन ! घरकी संभाल करना) तब लाड़ीमें कहा जायगा–

" लई ! गरजी मीट किजइँ " ।

घोड़ेसे गिरकर चोट लगनेपर वि० सिं० में कहा जायगा–

" घोड़ ताँ पियुसि किरी, अची वियमि चोट "

(= घोड़े से गिर पड़ा और चोट लग गई)

यह वाक्य लाड़ी में इसप्रकार कहा जायगा–

" गोरे ताँ पीसि छणी, अची विमि चोट "

लाडी सिन्धी का हिन्दी – शब्दानुवाद सहित नमूना

संख्या १—

हिकिड़ माण्हुअ् खे ब पुट्ठ हुआ। तिनि माँ नन्ढे पाँ-जे पे-खे चयो
एक मनुष्य को दो पुत्र थे। उनमेंसे छोटेने पिता को कहा
त, ' ए अबा ! माल मा-जे-को भाङो मूँ-जो थिए सो मूँ खे दे
कि हे पिता ! सामग्री-मेंसे जो भाग मेरा होवे वह मुझे दो
हुन पाँ-जो मालि उननि-खे-विराए-दिनो, अँइँ थोरनि दीँ-
उसने अपनी सामग्री उन–को बाँट – दी, और थोड़े दिनों
हनि-खाँ-पोइ, नन्ढो पुट्टि सभि मालि मेरे परिदेसि हलिओ-विओ
के बाद, छोटा पुत्र सब सामग्री कठी कर परदेस चला – गया
आँइँ उते पाँ-जो मालि अपलछणानि-मे विञाए – छदिआँईं
और वहाँ अपना माल व्यर्थकामोमे गवाँ दिया,

अँइँ जदहिँ सभि खपाए-रहिओ उन खाँ-पोइ उन-
और जब सब खलास कर-दिया उनके बाद उस
देह-में दाढो दुकार अची पिओ, अँइँ हुन-खे सोर पवण
देशमें- बहुत दुकाल आ पड़ा, और उसको तंगी परने
लगी-उन-देह-जे हिकिड़े शाहिरवारिअ-खे वञी चोटो, उन-
लगी। उस देश के एक नागरिक-को जा चिपटा उसने
पाँ-जे बनीअ-में सूअर चारण-ते रखिउस-जे-के तो सूअरनि
अपनी खेत-में शूकर चराने-पर रखा जो भी शूकरो ने
थे खाधो, से बि खाई पाँ-जो पेटि बरे-हा, पर कँहि दिनिसि कीन
था खाया, वह खाकर अपना पेट भरता-था, पर किसीने दिया नहीं
जदहिँ उन-खे यादिगिरि पई त मूँ-जे पे-जे केतिरनि-
जब उसको स्मरण आया कि, मेरे पिताके कितनेही-
कमिअनि वटि जझी मानी खाइण-लाइ आहे, अँइँ उननि-वटिइ
मजदूरोंके पास बहुत रोटी खानेके-लिए है, और उनके पास
बची थी-पवे, अँइँ आऊँ हित लंघण पिओ-मराँ-आऊँ उथी पे
बच जाती है, और मैं यहाँ उपवास रहाहूँ-मर-मैं उठकर पिताके
-वट थो वञाँ अँइँ वञी थो चवाँसि त अइ अबा! मूँ भगि-
-पास हूँ जाता और जा कर बोलूँ तो हे पिता! मैंने ईश्वर
वान-जो अँइँ तो-जो गुनाहि-कयो-आहे हाणे आऊँ लाइकि
का और तुम्हा-रा अपराध-किया है अब मैं योग्य

न आयाँ जो तो-जो पुट्ठु कांठायाँ। मूँ-खे पाँ-जो पघारदारि
न हूँ जो तुम्हारा पुत्र कहाऊँ। मुझको अपना पघारदार
नोकरि करे रखु " अँइँ उ उथी पे-दाहँ हलिओ। पर अञाँ दूर
नोकरी कर रखो " और वह उठ पिताकी-ओर चला। पर अभी दूर
-हो त पिणिसि दि सी-वरितो अँइँ उन-खे कोल आई; अ डोरी
था तो पिताने देख - लिआ और उसको दया आई, और दौड
विओ, अँइँ गिलाटडिउँ पाए चुमिउँ दिनीसि तदहि पुटिसि
गया, और आलिंगन कर चुंबन दिया तब पुत्र ने
चयो, 'अबा! आउँ परिमेस्वर-जो अँइँ तो-जो दुवारी आयाँ,
कहा, 'हे पिता! मैं ईश्वर - का और तुम्हारा अपराधी हूँ,
अँइँ आऊँ लाइकि न आयाँ जो तो-जो पुट्ठु सदिजाँ'। पर पिणासिइ
और मैं योग्य नहीं हूँ जो तुम्हारा पुत्र कहाऊँ। पर पिताने
पाँ-जे बेलिअनि-खे चयो त, तमाम खाशो वगो खणी-अचो
अपने नौकरों - को कहाकि, तमाम उत्तम वस्त्र ले - आओ
आँइँ पेरायोसि; अँइँ हथ -में मुंडिरी पायोसि, अँइँ पेरनि
और(इसको)पहनाओ; और हाथ - में अंगुली पहनाओ. और पाँव
में जुती विजोसि अँइँ हलोत-खाऊँ अँइँ मज़ा करियूँ; छो
में जुती डालो, और चलोत-खावें और मजा करें; क्यों
जो ही मूँ-जो पुट्ठु मुओ हो, सो हाणे जिअरो थिओ-आहे; अँइँ
कि यह मेरा पुत्र मरा था. वह अब जीवित हुआ-है, और

हू गुमि थी-विओ-हो, अँइँ लधो आहे ' अँइँ हू मज़ा करण
वह गुम हो-गया - था, और मिला है। और वे मजा करने
लगा।
लगे।

हुन-जो वदो पुटु जो बनिअ-में हो सो जदहिँ आयो
उसका बड़ा पुत्र जो खेत - पर था वह जब आया
अँइँ गर-जे ओदरिआँ थिओ, त उन राग अँइँ नाचि सो, तदहिँ
और घर-के पास हुआ, तो उसने राग और नाच सुना तब
उन हिकिड़े-नोकर-खे कोठे पुछिओ त, ही कुजा थो-थिए?
उसने एक - नौकर-को बुला पूछा तो, यह क्या हो-रहा-है?
उन चेसि त, बाणे आयो-आहे, अँइँ पिणे मजिलस कई-आहे,
उसने कहा कि (तुम्हारा) भाई आया है, और पिताने मजलस की है,
छो-जो उन-खे शही-सलामत अची मिलिओ-आहे। उन
क्यों-कि उनको वह स्वस्थ आ मिला- है। उसको
-खे चिर लगी, अँइँ मंझइ कीन थे-विओ ताँहिँ-करे पिणासि
गुस्सा लगा, और अन्दर नहीं था- जाता उस लिए (उसका) पिता
बारि आयो अँइँ खाँएसँ-समिझायो-अँइँ उन वराणिअ-में
बाहर आया और उसको समझाया और उसने उत्तर-में
पाँ-जे पे-खे चयो त, दिसि त आऊँ केतिरानि वरनि-खाँ
अपने पिता-को कहा कि, देखो तो मैं कितने वर्षों-से

तो जी चाकिरी पिओ कयाँ, अँइ कदहिं बि तो - जे हुकिम
तुम्हारी सेवा रहाहूँ कर, और कभी भी तुम्हारी आज्ञा
खाँ बारि न वियो - अयाँ; तदहिं बि तो मूँ - खे हेकरो छेलो बि
से बाहर न गया हूँ. तब भी तुमने मुझ-को एक अजापुत्र भी
न दिनो, जो आऊँ पाँ - जे यारनि - साँ मजा कयाँ। पर ही
न दिया, जो मैं अपने दोस्तों - से मजा करूँ। पर यह
तो - जो पुटु जें - पाँ - जो मालि रनिअँनि - में विञायो आहे,
तुम्हा - रा पुत्र जिसने अपना माल रंडियों में गँवाया है,
सो अची - पोतो - आहे, त तो उन - लाइ मजिलस दिनी आहे"।
वह आ पहुँचा है। तो तुमने उसके लिए मजलस दी है".
तदहिं उन चयो त - पुट तूं सधाइ मूँ वटि आईं, अँइं
तब उसने कहा कि - पुत्र! तू सदाही मेरे पास है, और
जे की मूँ - वट आहे सो सभि तो - जो - ई आहे। असाँ - खे
जो भी मेरे - पास है वह सब तुम्हा - रा - ही है। हमलोगोंको
वाजिबइ हो खुशि थियाणि अँइं मजा माणाणि; छाकाणि
योग्य था खुश होना और मजा भोगना; क्यों कि
बाणे जो मुओ हो सो वरी जिअरो थिओ आहे; गुमि
(तुम्हारा) भाई जो मरा था वह फिर जीवित हुआ है गुम
थी विओ हो सो लदो आहे।
हो गया था वह मिला है।

——

थड़ी सिंधी

थड़ प्रदेश में विशेष करके मेमुण लोग (जो मुसल्मान होने से पूर्व हिन्दू थे) लाड़ो - सिंधी के समान ' ह ' का उच्चार कम करते हैं। ये लोग विचोली - सिंधी के ' हाओ ' (हाँ - स्वीकारात्मक) का ' आँअँ ' उच्चार करते हैं। जिसकी ध्वनि दर्दसे कराहनेवाले व्यक्ति की आवाजसे मिलती जुलती है। परंतु यहाँ के हिन्दू इसका (' हाओ ' का) उच्चार ' होई ' करते हैं।

हैदराबाद (सिन्धु)-वालोंके समान ये थड़ी लोग भी ' ड़ ' और ' र ' में भेद नहीं रखते। जैसे - कपिड़ो को कपिरो, जहिड़ो को जहिरो, तहिड़ो को तहिरो और कहिड़ो को कहिरो कहते हैं।

संस्कृत से उत्पन्न शब्दोंका पुनः असली रूपमें उच्चार करने की प्रवृत्ति यहाँ के लोगोंमें विशेष है। जैसे - पुट को पुत्र, मुण्डी को मुद्रा, और खेट को खेत्र, आदि कहेंगे। परंतु ' र ' संयुक्त शब्दों में ही यह प्रवृत्ति है।

ये लोग लाड़वालों के समान अनुनासिक का प्रायः कम उपयोग करते हैं। इसलिये जँहिँ को जहिँ, तँहिँ को तहिँ और कँहिँ को कहिँ कहते हैं। परंतु खाइणु को खाँवणु (= खाना) कहेंगे।

जिस प्रकार गुजरातीमें 'एक' शब्द के पीछे निश्चयार्थ—बोधक ' ज ' प्रत्ययका प्रयोग करते हैं (एकज), उसीप्रकार ये थड़ी भी अरगो (= आगे) के पीछे ' ज ' प्रत्यय जोड़कर ' अरगोज ' कहते हैं।

मनुष्य के नाम में अंतिम स्वर के स्थानपर ' यो ' आदेश विशेष रूपसे करते हैं। जैसे - गणेशु का गणेस्यो, जेसो का जेस्यो सूमारु का सूमार्यो, और पूरो का पूर्यो आदि।

थड़के कराड़ जाति के वैश्य लोग भी गुजराती वैश्यों की तरह अपने नाम के पीछे ' शाह ' पद जोड़ते हैं। जैसे– बुलाशाह, केवलशाह, जगूशाह आदि।

सर्वनाम:–

थड़ी के सर्वनामों में विचोली - सिंधी से कुछ थोड़ा परिवर्तन होता है। जैसे–

विचोली	थड़ी	
मूँ वटि	में वटि	(मेरे पास)
मूँ साँ	में साँ	(मेरे साथ)
तुँहिँ जो	तेँ जो	(तुम्हारा)
पँहिँ जो	पाँ जो	(अपना)

यद्यपि थड़ प्रदेशकी पूर्वकी सीमा कच्छ और लाड़के साथ मिली हुई है, फिर भी यहाँ के लोग उनके समान शब्दोंसे ख, घ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, और ह को निकाल नहीं देते। जैसे—लाड़ीमें कहेंगे ' इआ ' तो थड़वाले कहेंगे ' इहा ' (विचोली सिंधीके समान अर्थ है = यह)। "धूम केहाई" (आनंद, खुशी कैसी) इस थड़ी वाक्यमें ' ध ' और ' ह ' का स्पष्ट उच्चार है।

विशेषण

थड़ीमें ' चङो ' (= अच्छा) के बदले ' भलो ' कहते है । जैसे-मूरि भलो लिओ (= बिलकुल अच्छा वस्त्र) । घणो [=बहुत] को ' घाणि ' कहते हैं । जसे-घाणि दीहँ थिया (=बहुत दिन हुअे) ।

[क्रियापद]

थडीमें ' हलणु ' [= चलना] को ' वहणु ' कहते हैं । यदि किसीने पूछा कि " अमुक कहाँ है " प्रत्युत्तर मिलेगा " विराँड ताई-हिते हो, पोइ वह्यो दोपिले " ' तीसरे प्रहर तक यहाँ था पीछे दीपले गाँवको गया ' । शाहने भी कहा है—

" के धरितीअ माइ, के जर सन्दी सजणे ।
वही अइ वाझाइ, बिन्ही जेरनि विचमें ॥ "

शा.

इस प्रकार थिअणु को थेवणु, खाईंदो को खाअँदो, चाहीन्दो को चाहन्दो और वियो को गयो आदि कहते है ।

" काल्हो को कादे गयो संदो जोग्युनि जोशु " ।

शा. रामकली १।३१॥

अव्यय और प्रत्यय:—

थड़में लाइ (= लिये) के बदले ' खाँ ' का प्रयोग करते हैं । जैसे -" हुन खाँ " (हुन लाइ = उसके लिये) और ' पिणि ' (= भी) को ' पणि ' कहते हैं ।

वाक्य:–

कुछ वाक्यों के नमूने नीचे दिये जाते हैं–

थड़ी—

" हिन मिजमानी की (यहाँ ' की ' हिन्दी का क्रियापद है) हिन खाँ जो हो सकरारो थियो हो "।

विचोली सिंधीमें यह वाक्य इसप्रकार कहेंगे—

" हिन मिजमानी कई हिन लाइ जेकी कुझु चङो थियो हो "। (= इसने मिजवानी की इसके लिये जो हुआ अच्छा ही हुआ)

थड़ी—

" हिन जो पेओ (= पीऊ, पिता) हो, तहिँ खाँ (लाइ) बाहिरि बिही रह्यो "।

विचोली:—

" हिन जो पीऊ घर मंझि हुओ तँहिँ लाइ बाहिरि बिही रह्यो "।

(इसका पिता घरमें था, इसलिये बाहर खड़ा हो गया।)

थड़ के कुछ विशिष्ट शब्द:—

थड़ के लोग जब आपसमें मिलते हैं, तब कुशल-प्रश्न सूचक चाकु, जोरु, सकरारो, खेरखीँ, होकारीमें, रुड़ा, भला आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं।

" खिमंदरनि खेरखेँ (= सुख, सलामतीसे)
चूंदर चङा न थिया "। शा०

" मुरकी माता, रूड़ी राअ दिआचजी " शा०

राजस्थानी में ' रुड़ा ' शब्द का प्रयोग मिलता है ।–

" पंथी एक संदेसड़ऊ, भल माणस नइ भक्ख ।
आतम पासइ अछइ, आलग रूड़ा रक्ख ॥ " ११४॥

" ढोला मारुरा दूहा " (ना. प्र. स. काशी)

थड़ीमें खंघि (= खाँसी) को दौँस और उञ (= तृषा) को तौँस कहते हैं ।

" तनमें तौँस प्रियनि जी, पियाँ न ढापाँ " ।
(शरीरमें तृषा प्रियमतकी पियूं न तृप्त होऊं)
शा०

इसप्रकार थड़ के अपने और भी अनेक शब्द हैं जो ' शाह जो रसालो ' के ' सुरु मारुई ' में हमें मिलते हैं ।

ढ़ाटकी सिंधी—

थड़की भाषा का एक उपभेद ढ़ाटकी नामसे प्रसिद्ध है। थड़के उत्तर-पूर्व में जेसलमेर और मारवाड़ तथा दाक्षिण-पूर्वमें पालनपूर, कच्छ और लाड़की सीमाएँ हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि इन सीमावर्ती भाषाओंका थड़ी पर प्रभाव पड़े। इससे जो उप-भाषा बनी उसका नाम हुआ 'ढाटकी'। थड़के ठक्कर, करार, भील, आर मेघवार आदि इसका प्रयोग करते हैं। गुजराती यदि कहेंगे— "हूँ जाऊँ छूँ" तो ढाटकी में कहा जायगा—"हूँ जाऊँ तो"। यहाँ 'तो' क्रियापद सिंधी 'थो' का रूपांतर है।

शाह अब्दुलतीफने अपने ग्रंथमे रसालें में एक सुर (=अध्याय) लिखा है जिसका नाम है "ढोल मारुई"। इसमें 'ढाटकी-भाषाका प्रयोग किया गया है। शाहनें 'ढोल मारुई' के राजस्थानी लोक गीत अवश्य सुने होंगे जिनसे प्रभावित होकर अपने ग्रंथमें उसपर एक अध्याय लिख दिया। जब नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशीसे प्रकाशित "ढोला मारुरा दूहा" ग्रंथ दृग्गोचर हुआ, तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कि बहुतसे दूहे दोनों पुस्तकों में लगभग एक जैसे ही मिले। यह बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट मालूम होगी:—

१ ढाटी जे ढोल मिले, त ढोलाए कहीज।

ढाढी! यदि ढोला मिले, तो ढोलाको कहना।

करसणु पको कणु छण्यो, लाओ आप करीज ॥४॥
खेती पकगई है अन्न गिरा है, लाकर अपना करना।

शा. सुरु ढोल–मारुई.

ढाढी एक संदेसड़उ, ढोलाइ लगि लइजाइ।
ढाढी ! एक संदेश ढोला तक पहुँचाओ।
कण पाकउ करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ ॥ १२१ ॥
अन्न पका है खेती हुई है. भोग लो घर आकर।

ढोला–मारूरा दूहा

२. कुँजाँ राति करीडियो, टोलीअ – टोलीअ बीस।
कुररी पक्षिओंने रातको कलरव किया. समूह – समूह बीस।
सुते ढोलु संभरियो, मोरे उरुले भागे ईस ॥ ३ ॥
सोते ढोला यादपड़ा, मुझे हृदयमें ले बाजूमें स्वामी।

शाह–

कूँझाड़ियाँ कलह कियो, टोलई - टोलई वीस।
कुररियोंने आवाज किया, समूह – समूह बीस
मारू पौढे एकली, उर संचापे ईस ॥ ७१/१
मारू सावे अकेली, हृदयसे लगावे स्वामी

ढो. मा. दूहा (परिशिष्ट - " क ")

३. उभे सूरज सामुहियेँ, मथो भरे मेट।
खडी सूर्य संमुख माथेमें भरकर मेट (मुलतानी मट्टी)।
तासु उपन्नी पेट, हेम वरनी मारुई ॥ १४ ॥
उसके उत्पन्न हुई पेट (से). स्वर्ण–वर्ण वाली मारुई।

शा.

"माथउ धोइ मेटि, उभू सूरज साँमुही ।
माथा धोकर मेट (से), खड़ी सूर्य सम्मुख
तउ उपन्नी पेटि, मोहण वेळी मारुई ॥ १२६ ॥
तो उत्पन्न हुई पेट (से), मोहक वल्ली मारुई ।

ढो. मा. दूहा (परिशिष्ट-" च ")

न केवल इतनाही अपितु भाषा और व्याकरण की दृष्टिसे भी संपूर्ण शाहजो रसालो और ढोला मारुरा दूहा में बहुत साम्य है इस पर फिर कभी लिखा जायगा ।

थड़ी – सिन्धीके हिन्दी – शब्दानुवाद सहित कुछ नमूने

संख्या १—

स्टेट जेसलमेर

हिक माड़हूंखे ब पुत्र हा हुनन मंझा निढे पुत्र अबा खे चयो, ए
एक आदमीको दो पुत्र थे उन में छोटे पुत्रने पिताको कहा हे
अब्बा ! माल मंझा मह्जो भांगो हो सो मे खे डे। तड्ही हुन हुनन्खे
पिता ! माल में मेरा भाग हो वह मुझे दो। तब उसने उनको
पाँहजी मुराग बिराहे डिन्ही। घणा डींह न थ्यात निढो पुत्र सभु
अपनी सपत्ति बाँट दी। बहुत दिन न हुए तो छोटा पुत्र सब
गड्डुकरे अघए ँ डेह हल्यो ग्यो अऊँ ओथी लुच्याई मंझ पांहजो
कट्ठाकर दूर देश चला गया, ओर वहाँ लुचाई में अपना
धन्न विंजाये डिन्हो। जड्ही सभु विंजाय चुको तड्ही उन्ही डेह डाढो
धन गमा दिया। जब सब गवाँ चुका तब उस देशमें बहुत
डुकार पयो अऊँ हुनखे तँगचाई थ्यण लगी। तड्हीं हो हूनी मुल्कजे
दुकाल पड़ा और उसको तंगी होने लगी। तब वह उस मुल्कके
हिक माड्हू वटि टिक्यो जेहें हुनखे पहंजन खेंत्रन मंझि मिरू चारणखे
एक आदमीके पास रहा जिसने उसको अपने खेतिओं में पशू चराने को
मुको अऊँ उहोजे छिलुं मिरू खाउंदा हा ताहिं_सां पाणजो पेटु भरण
भेजा और वह जो छिलके पशु खाते थे उस–से अपना पेट भरना

चांवदो हो से पण हुनखे कोई कींन दींदो हो ! तडी हूनखे अकुल
चाहता था वह भी उसको कुछ नहीं देता था । तब उसको अक्कल
आयो, अऊँ चवण लगो त मंहिंजे पेयोजे पोर्ह्यतनखे खावण खाँ वधंदो
आई, और कहने लगा कि मेरे पिताके नौकरो को खाने से अधिक
मानी थे थी अऊँ आँ बुख थो मरा। आं उथीं पंहजे पेयो वटि वीं-
रोटी होती है और मैं भूख हूँ मरता । मैं उठ अपने पिताके पास
दुस अऊँ हुनखे चंवदुस अबा ! म्हे अलाहजो अऊँ तहिंजो गुनाहु
जाऊँगा और उसको कहूँगा हे पिता ! मैंने अल्लाहका और तुम्हारा अपराध
क्यो आहे हाणे तहिंजो पुत्र चवण लायकु कींन अहीं मुखे तहिंजन पोर्ह्य
किया है अब तुम्हारा पुत्र कहाने योग्य नहीं हूँ मुझको तुम्हारे नौकरों
तन मंझा हिक जेडो करि। पोय उहो उथी पेयोडे ग्यो। पण उहो
में एक जैसा करो बाद वह उट पिताकी ओर गया। पर वह
अरगोज होत हुनखे पेयो डिठो अऊँ रहमु करे द्रकी भाकुर विझ
पाही था तो उसको पिताने देखा और दया कर दौड़कर आलिंगन कर
गड्यो अऊँ मिठ्ठ डिन्हें। पुत्र बाबे खे चयो, अबा म्हे अलाह जो
मिला और चुंबन दिया। पुत्रने पिता को बोला, हे पिता मैंने अल्ला कहा
अऊँ तहिंजो गुनाहु क्यो आहे हाणे तहिंजो पुत्र चवण लायकु कीं न
और तुम्हारा अपराध किया है अब तुम्हारा पुत्र कहाने लायक नहीं
अहीं। पर पेयो पंहजन नोकरनिखे चयो त मूर भलो लेओ गिन्ही
हूँ। पर पिताने अपने नौकरों को कहा कि बहुत अच्छा वस्त्र ला

अची हुनखे पेहरायु अऊँ अयां खाई-पी खुसी कर्यू क्यो जो इहो मह्जो
कर उसको पहनाएँ और स्वयं खा-पीकर आनंद करें क्यों जो यह मेरा
पुत्र मरी गयो हो मोटी जीयो आहे, विंजाजी प्यो हो, वरी लधो
पुत्र मर गया था लौटा जीवित है(हुआ), गुमहो गया था, फिर मिला
आहे। तड़्हीं उहे खुसी करण लगा।
है। तब वे खुशी मनाने लगे।

उन्हीं वेल वडो पुत्र खेत्र मंझि हो अऊँ जड्हीं घरखे वेझो आयो
उसी समय बड़ा पुत्र खेती पर था और जब घरके नजीक आया
तड्हीं सरोज अऊँ नाचजी धूम बुधी नोकर मंझा हिकखे वेझो घुराए
तब सरोज और नाचकी धूम सुनी नौकरोंमेंसे एकको पास मंगा(कर)
पुछ्यो-त इहा धूम ख्याई आहे। हून चयो तह्जो भाऊ आयो अहे,
पूछा तो यह धूम कैसी है। उसने कहा तुम्हारा भाई आया है.
अऊँ तह्जे पेयो मिज्यानी की अहे हिनखा त हून पांजे पुत्र खे चंगो
और तुम्हारे पिताने आतिथ्य किया है इसलिये कि उसने अपने पुत्रको चंगा
-भलो डीथो। पर हूनखे इहा गाल बुधी कावड़ आई अऊँ घर मंझि
- भला देखा। पर उसको यह बात सुन गुस्सा आया और घरके अन्दर
कीन ग्यो। तहिंखा हुनजो पेयो बाहर निकरी हूनखे मनावण लगो।
न गया। इसलिये उसका पिता बाहर निकल उसको मनाने लगा।
तड्हीं हून पेयोखे वर्दी डिनी त डिसु आं हेत्रन वर्हिनखा तड़ी चाकरी
तब उसने पिताको उत्तर दियाकि देखो मैं इतने वर्षों से तुम्हारी नौकरी

करां थो अऊँ कड़ीं तहो हुकुमु कीन रेख्यो; अऊँ तो मेखे कड़ीं
करता हूँ और कभी तुम्हारा हुक्म नहीं उल्लंघन किया, और मुझको कभी
बकरुई कीन डिन्हो, त आं महन संगत्यन साण खुसी करीं हूंद।
बकर नहीं दिया, तो मैं अपने मित्रोंके साथ आनंद करता।
पर तहो ही पुत्र जो कंजरियां साण तहा धणु - मालु खाई आयो
पर तुम्हारा यह पुत्र जो रंडियों में तुम्हारा धन—माल खाकर आया
तहिं खे ईंदे सई तो मिज्यानी डिनी। पेयो हुनखे चयो, पुत्र! तू
उसको आते ही तुमने आतिथ्य किया। पिताने उसको कहा, पुत्र। तुम
सदा मं सां गड्ड अहीं; अऊँ जेकी मं वटि आहे, सो सभु ताजो
सदा मेरा साथ हो और जो भी मेरे पास है, सो सब तुम्हारा
आहे। पर अपां खे खुसी कर्णी अऊँ राजो थेवण लायकु हो; क्यूं
है। पर अपनेको खुशी करना और राजी होना योग्य था, क्यों
जो तहो भाऊँ मरी ग्यो हो, वरी जीयो अहे; विजाजो प्यो हो,
कि तुम्हारा भाई मर गया था, फिर जीवित हुआ है, गुम हो गया था,
मोटी लधो आहे।
वापस मिला है।

——

जिला – थड़ – पारकर की थड़ेली अर्थात् ढ़ाटकी – सिन्धी

संख्या २—

नारी – आज अवेला क्यूं आविआ, कहरो मुज-में काम ?।
आज कु-समय में क्यों आया है. क्या मुझमें काम है ?
थाँरो मँहतो घर नहीं, इए सुगणी-रो शाम ॥
तुम्हारा मुंशी घर नहीं, यह सगुणी–का पति (है)

राजा– शहर उजेणी हूँ फिरिओ महले आविओ आज।
शहर उज्जैन मैं फिरा गलीमें आया आज।
तास अवेलो आविओ तुज बलावण काज।
इसलिये कु-समय में आया तुझे बुलाने के लिए !

नारी – चंदर ग्यो घर आपने. राजा ! तूँ भी घर जा।
चन्द्रमा गया घर अपने, हे राजा! तू भी घर जा।
मैं अबला-सी-से कैसो बलणो, तूँ केहरि हूँ गा।
मुझ अबला- सी- से कैसा बोलना, तू सिंह मैं गाय।

राजा– केहिर कवली बखे छाली बखे नाहर।
सिंह गाय निगले अजा-पुत्र को निगले बाघ।
जोखो लागे जिंदु-ना लाखोँ करे बिचारु।
हानी लगे प्राणोंको लाखों करे विचार !

नारी – अईओ ! शीँह पचाणां, हेकल गिर अबीह।
अहो ! सिंह निर्भय, अकेला गरजता है वीर

घर ऊँदराँ-रा ढुण्डितो त-नाँ शरमु न आवे शीँह।
घर चूहों-का ढूण्ढता को शरम न आवे सिंह
राजा– सज सहेची! सिंगार राजा करे पुकार।
सजाओ सखि! शृंगार राजा करे पुकार।
जोखमु लागसी जिअ-नाँ लाखों करे विचारु॥
खतरा लगेगा प्राणों–को लाखो करे विचार॥
नारी– बारि डीजे खेतर-नाँ बारि खेट-नाँ खाइ।
मेंड दीजे खेती–को मेंड खेती–को खाए।
राजा डण्डे रईअत-नाँ जिणे-रे कूक कणे लग जाइ।
राजा दंड दे प्रजा – को अपनी फर्याद किसके पास जाय।
राजा– कूक मत कर रे सहेची! कूक कैआँकि होइ।
फर्याद मत कर रे सहेली! फर्याद किसकी होगी
केहरके मुख बकरी, छूटी सुणी न कोइ॥
शेर के मुख बकरी, छूटी सुनी न किसने॥
नारी– आणि डिआँ आप-री, आणि मत लोपो आप।
शपथ देऊँ आप–को शपथ मत लोप(करो) आप।
हूँ कवली तूँ ब्राह्मण, हूँ बेटी तूँ बाप॥
मैं गाय तू ब्राह्मण, मैं बेटी तूँ बाप॥
(लि० स०० इ०, भा० ८)

——

जिला थड़-पारकरका साहित्यक-सिन्धीका नमूनाः-

संख्या ३—

१. जेको घोडे उते चड़्हे, खासा कपडा बुतते करे
जो घोड़े पर चढ़े, उत्तम वस्त्र शरीरपर करे
खणे बन्दूक अइँ बन्धे तरार
लेवे बन्दूक और बान्धे तलवार
तेहिँ खे चइजे पको हस्वारु।
उसको बोले पक्का सवार।

२. हथ में भालो पुठिते ढाल
हाथमें भाला पीठपर ढाल
चड़्ही घोड़े खे डिआरे छाल
चढ़ घोडको दिलाए छलांग
वञी झंगनि में करे शिकार
जा(कर) जंगल में करे शिकार
ताहिँ खे चइजे..............
उसको बोले..............

३. कानु-कमान खणे जो साणु
तीर धनुष्य लेवे जो साथ
चड़्हे घोड़े ते छोडे बाणु
चढ़े घोड़ेपर छोड़े बाण
हणे तीरु जबलजे पारि
लगावें तीर पर्वतके पार
तँहिँ खे चइजे........
उसको बोला........ (लि. स. इ., भा. ८.)

थड़ेली या ढाटकी के कुछ नमूने

स्टेट जेसलमेर

संख्या ४—

(राणो थो चवे = राजा कहता है)

१. मूमल ! मिजमाननजा हिंय न भजन हक
हे मूमल ! महमानों के इस प्रकार टूटते हैं प्रेम
हिकु ओजाका अंखन खे ब्या लताड़िया लक
एक नींद न आना नेत्रोंको दूसरा पार किए कठिन-मार्ग
चाड़े चादर खट्ट वंजे सुते सीतल राव साँ
चढाकर चद्दर खाटपर जाकर सोई सीतल रावके साथ

(मूमल थी चवें)

ज सम्हाहुंदा सीतल राव सां त डिहूँ दुसुं दरी
यदि सोई होती सीतल रावसे तो देती (बंदकर) निश्चित किवाँर
सड्ड करीं हुंदा केतरा डेही ताक तरी
आवाज किआ होता कितना देकर किवाँरपर तली (हाथकी)

२. माडहूँ मियां महेन्द्रा थीया कान कची
मैं मिया महेन्द्रा होऊँ नहीं कची
रुगन रोसाहन जी तोखे पइआ मय मचो
व्यर्थ रूठनेकी तुमको पड़ी हैं बहुत अग्निज्वालाएँ
हेकर हिति अची करि मारिया मंझि मुकाबलो
एकवार यहाँ आ करो अटारी में मुकाबला

४. (राणो:) मूमल ! तहंजी काकते ईंदुस कोन वरी
मूमल ! तुम्हारे काक(शहर)में आऊँगा नहीं फिर
तोजे बोल बहयूँ क्या तेहमां कोन परी
तुमने जो वचन बहुत किए उस मेंसे नही पाले।

५. आयोहोसि अधरातिजो कहीं सोक पई
आया था आधी रातको दूरसे उत्साह युक्त हो
सूती पई ही सीतल राव सां खट्ट ते बेलबई
सोई पड़ी थी सीतल राव से खाटपर आलिंगनकर

६. वैरी सीर वई, मोटी न कन्दासे मुलाकात,
गई नदी बहकर, वापस न करेगें मुलाकात
(मूमल:) "तोड़े सीर वहे तो भी मोटे कन्दा से मुलाकात"
यद्यपि नदी बहे तब भी वापस आकर करेंगे मुलाकत

७. गड्ड डिठाहे "गाजीचे" तूं मोटे कीन हुंदा मीर !
साथ देखा है 'गाजी कहता है' तू वापस नही होंगे मीर
सट्टि विझे हुंदा सर्वाही सोढ़ा बहए हुंदा सीर
डालबे होते तलवार सोढा बहती होती नदी
पोय करणु नज़ीर राणा ! कम्म रणन् जो"
पीछे करना प्रार्थना हे राणा ! (यह) काम (है) राडोंका।

मारवाडी (ढ़ाट की थड़ी) स्टेट: जेसलमेर–

१. सरसती माता ! तुज पाए लागाँ। जाणा घणेरी साहे बध माँगाँ।।
हे सरस्वती माता तेरे पाँव पड़ू। जानू बहुत सहायता बांध(हाथ)माँगूँ.

२. बळिओ रे सोढो देसाँ-में बँको। वेरी उवँ-रा सूता उदर-के।।
लौटा सोढा देश में बाँका। शत्रु उसके सोये पेट बल

३. सिव हाथी-सिंध-रे सदाए सुखे। रिध-सिध री कमी न काहे।।
सिंह हाथी–सिंह सदा सुखी। ऋद्धि–सिधि की न्यूनता न कोई

४. राजा माने-छे मूल-राज राजा। जीते-रा बाजा खूरी-में बाजा।।
राजा मानता है मूल-राज राजा। विजयका बाजा खूरी(गांव)में बाजा।

५. हाथी-सिंघ चाढिया हैदराबाद जावे। जावे मीराँनाँ मालम किधे।।
हाथी सिंहपर चढ़कर हैदराबाद जावे। जाकर मीरोंको मालूम किया।

६. मीर साहिब टूथो हुक्म डिन्हो। रूड़ी सिरपाव-ने घोड़ो डिन्हो।।
मीर साहब प्रसन्न(हो)हुक्म दिया। प्रसन्नहो सिर-पगडी और घोडा दिया

७. सिरपाव पेहरे-ने डेरे पधार्या। डेरे-रा बेली दीसे सज्योड़ा।
पगरी पहनकर डेरे आया। डेरे–के मित्र देखे सजोड़

८. हाथी-सिंघ चाढिया देस-ना आवे। सारी ढाट-में उचरंग पावे।।
हाथी–सिंह–चढ़ा देशको आवे। सारी ढाटमें उत्सव पावे

९. भगवान अंडे-रो छोड़-सूँ आवे। काके हेमराज-रा कागद लावे।।
भगवान भ के छोड़ से आवे। काके हेमराज–का कागद लावे।

१०. कागद बचावे रीस चढ आवे । एड़ो नजर-माँ कोई न आवे ।।
कागद पढ़ावे क्रोध चढ अ.वे । ऐसा नजर-में कोई न आवे ।

११. वळियो रे सोढो बेर घतावे । हाथी-सिंघ-रा कागद जोधाँ ना जावे।
लौटा है सोढा वैर पाकर । हाथी-सिंह का कागद जोधां को जावे

१२. हाथी-सिंघ हाकम हुआ छे भेला । भेला हुए-न बात बिचारी ।।
हाथो-सिंह हाकम हुए है कट्ठे । कट्ठा हो कर बात विचारी

१३. भलँ दौलत-सिंघ-र सपूत जायो । थाल भरे-ने मोतिया बधायो।।
अच्छा दौलत-सिंहको सुपुत्र जन्मा । थाल भर-के मोती बाँटे

१४. चारन भाट गुण गीत गावै । ऊँट घोड़ा नें मोजाँ - रा पावे ।।
चारण भाट गुण गीत गावे । ऊँट घोडा भी आनन्दको पावे ।

लिं स. ई. Vol. IX पार्ट II पृ. १२६.

———

कच्छकी सिन्धी—

श्रीमद्भागवतके छठे स्कंध के अ० ५ श्लो० २५ में कच्छ के प्रसिद्ध तीर्थ नाराइण - सरु (नारायण - सरः) को सिंधुका मुख्य तीर्थ माना है। ईसवी आठवी शताब्दीमें सिंधु - देशाधिपति ब्राह्मण - वंशज श्री दाहरसेनके शासन कालमें अर्थात् सिंधु पर अरबों के प्रथम आक्रमण-के समय भी कच्छ - देश सिंधुके अंतर्गत था। उसके बाद सिंधुके समा राजपूतोंका कच्छ और काठियावाड़ पर समान आधिपत्य रहा। काठियावाड़ के प्रसिद्ध दानी राजा राइ दियाचु (ई. ११०) का उदात्त चरित्र सिंधुके लोक - गीतों में प्रसिद्ध था ही, जिसको शाहने अपने रसालो ग्रंथमें सुंदर रूपसे चित्रण किया है। इस प्रकार कई शताब्दियोंसे सिंधुका कच्छ और काठियावाड़ से सांस्कृतिक तथा राजनैतिक संबंध रहा है। आज भारत को स्वातंत्र्य प्राप्त होनेपर दुर्दैवसे विभाजन हो जाने के कारण सिंधी - जनता एवं सिंधी - भाषा को अनाथ नहीं होना पड़ा। चिरकालसे अपने घरमें सिंधी-संस्कृति और सिंधी - भाषा का लालन - पालन करनेवाले कच्छी-भाइयों के साथ फिरसे मिलने - जुलने का सुअवसर मिला है। यहाँ-की भाषा सिंधी की एक शाखा मानी जाती है।

कच्छकी सिन्धीके उच्चार

१. हम ऊपर बता आये है कि कच्छकी-सिंधी और लाड़ी - सिंधीका परस्पर में सम्बन्ध है। इसलिए यहाँ के निवासी पदके अंतिम-

स्वर का प्रायः लोप कर देते हैं। जैसेः 'चईसि' का बोलेंगे 'चीस्' आदि।

२. पदोंको संक्षिप्त करनेकी इनमें विशेष आदत हैं। जैसेः 'अहमदाबाद' को कहेंगे 'अमदाबाद' आदि।

३. पदमें से 'ह' का प्रायः लोप कर देते हैं। जैसेः 'तहिँ' को 'तँ'; 'कहिँ' को 'कँ' और 'कहिँजो' को 'कीँजो' आदि कहते हैं।

४. यहाँ के लोग 'इ' स्वरका कुछ विशेष प्रकारसे उच्चार करते हैं। इसका ज्ञान केवल सुनने सेही होगा।

५. पदके अंतमें आये हुए 'आँ' स्वरको भी कुछ लंबाकर बोलते हैं। जैसेः "आऊँ कुरो करियाँ...." (वि. सिं. "माँ छा करियाँ = मैं क्या करूँ)

सर्वनाम :

कच्छी - सिंधीमें सर्वनामों में 'हू' को 'ऊ' (=वह) 'आउँ' को 'आऊँ' (=अहं) और 'पाण' (अप्पाणं = आत्मानं) को 'पिण्ड' (गुजरातीमें, पोते - पिण्ड), 'मुहिँजो' को 'माँजो', 'तुहिँजो' को 'तोजो', 'तहिँखे' को 'तेँके' आदि कहते हैं।

क्रियापद :

कच्छीमें वि. सिं. के 'थो' (= आस्ति) का 'तो' उच्चार करते हैं। परंतु वि. सिं. के 'हो' (= था) को 'थो' कहते है।

हैं। (वि. सिं. "तुहिँ जो भाउ वियो हो"; क. सिं. "तोजा भाउ वियो हुओ"।) वि. सिं. के 'हुवासीँ', 'हुवासूँ' (= हम थ) को क. 'हुन्दासोँ', 'आहे' को 'आए'; 'चवँदुसु' को 'चाँदोस्'; 'वेन्दुसु' को 'वेँदोस्', 'विकामिणे' का 'विकाजे' आदिरूप होते हैं।

अव्यय तथा विभक्तियाँ :

कच्छ की पूर्व - दाक्षिण सीमापर गुजरात के होने से वहाँ की भाषा का भी कच्छीपर बहुत प्रभाव हुआ है। जिससे थी, ज, और अने आदि रूप मिलते हैं। मराठी में भी 'अने' का 'अन्' रूप मिलता है।

कुछ वाक्य :

वि. सिं. "मिलिक्यत मझाँ जेका पती मुहिँ जो थिए, सा मुखे दे"

क. सि. मिलिकियत मझाँ नूँ जो को पती मोँजी थिए, सा माँखे दे"

वि. सिं. "रामिजी भेणुखाँ डिघो आहे"

क. सिं. "रामिजो बेन थो ऊँचो आए"

वि. सिं. हुन खाँ चङो आहे"

क. सिं. उन थे खासो आए"

वि. सि. "आऊँ कल्याणि जो वटि वेँदुसि अइँ
तहिँ खे चवँदुसि"

क. सिं. "आओँ कल्याणि जो वटि वेँदोस् अने
तेँके चोँदोस्"

कच्छकी–सिंधी के कुछ शब्द,

वि. सिं.	क. सिं.
सुञाणणु	ओरखणु (गु. ओलखनूँ– म - ओळखणें)
अढाई	अढ़ी (म. अढीच)
उछिलणु	फुगाइणु (गु. फुगाओ)
चाबो	बापो (गु. बापू)
पेर	पग (गु. पग)
खाइणु	जेमणु (गु. जीमनू, म.-जेवण)
चाई	बायरी (गु. बा.)
दिकी	पगिटी (गु. पगथी)
कुहणु	रेंसणु (चाकूसे मांस काटना)

———

कच्छी – सिन्धीके हिन्दी – शब्दानुवाद सहित कुछ नमूने:

हिकड़े माड़ू जा ब पुतर हुआ। तें मिंझानूं निढे पुतर पे के चिओ
एक आदमीको दो पुत्र थे। उनमें से छोटे पुत्रने पिताको कहा
–पे ! मिल्कत मिंझानूँ जुको मूँजी पती थिए से मूंके डे। पोय इन
–पिता ! मिल्कियत में से जो मेरा हिस्सा हो वह मुझको दो। फिर इंनने
पिंढजी मिल्कत इनींके विराइ डिनें । थोडेंज डींये पुठिआ निढो
अपनी मिल्कियत इनको बाँट दी। थोड़े ही दिनोके बाद छोटा
पुतर मिड़ भेरो करीने छेटेज कोक मुल्कमें हली निकर्यों; ने तिते
पुत्र सब कठ्ठा कर थोड़ा दूर किसी देशमें चल निकला; और वहाँ
पिंढजी जिकीं चीज वसत हुई से फेन-फतूरमें विजाई विधें जडे इन
अपनी जो भी वस्तु थी वह व्यर्थ काममें गमा दी जब इसने
मिड़ वावरी कढें तडे उन मुलकमें वडो हिकड़ो डुकार पिओ, अनें
सब गवाँ दी तब उस देशमें बड़ा एक अकाल पड़ा, और
पिंढके लंघण पोण लगा पो उ विञीने उन मुलकजे हिकड़े रोंधल
खुद(उसको)फाँका निकालने पड़े फिर वह जाकर उस देशके एक रहिवासीके
भेरो विञी यों; अनें तें इनके सूवर चारणला–खेतरमें हुलांए। सूवर
पास जा रहा;और उसने इसको शूकर चरानेके लिये खेतमें भेजा। शूकर
जुको छूला खेंधा हुआ से खाईनें खुसीसें उन पिंढजो पेट भर्यों
जो छिलके खाते थे वे खाकर खुशीसे उनका अपना पेट भरा
हुओ। पण कें इनके डिनूं न। जडे इनके अकल आवई तडें इन
होता। पर किसीने इसको दिया नहीं। जब इसको अक्कल आई तब इसने
चें–मूँजे पेजे केतरे मिणीं मुलइएके खपती उपरांत मानिऊँ, जुड़े–
कहा–मेरे पिताके कितने नौकरों को खपतसे जादा रोटी, बनती

तिऊँ अनें आउँ ता भुख प्यो मरां । आउँ उथीने मूंजे पे वटे
हैं और मैं तो भूख रहा हूँ मर । मैं उठकर अपने पिता के पास
वेंधोस। अनें तेंकें चोंधोस ज—पे । मूं अलाजे घर सामूं अनें ता
जाऊँगा। और उसको कहूँगा कि-पिता। मैंने ईश्वरके घरके सामने और तुम्हारे
आगिआ गुनाह किओ अय, अने हाणें आउं तोजे पुतर चोवाजाइ
आगे अपराध किया है; और अब मैं तुम्हारा पुत्र कहाने
लायक नांय। तोजे मुलइअं मिंझ मूँके हिकड़ो मुलइ करी रखु।
योग्य नहीं। तुम्हारे नौकरों मेंसे मुझको एक नौकर कर रखो।
पोय उ उथीने पे वटे व्यो। पण पिंढ घणूं छेटे हुओ तितरेमें इन
बादमें वह उठ कर पिताके पास गया। पर स्वयं बहुत पास हुआ तितनेमें इन
जे पे इनके डिठे; अने डिसंघेनें तें के रेहेम आवइ; अनें ढोड़ी करीने
के पिताने इसको देखा; और देखते ही उसको दया आई; और दौड़ कर
इनके बख बिझी मिठीउँ डिनें, तड़े पुतर इनके चें-" पें ! मूँ अलाजें
इसको अलिंगन कर चुंबन दिया, तब पुत्रने इसको कहा-"पिता मैंने ईश्वर
घर - सामूं अनें तोजी नज़र में गुनाह किओ अय अनें हाणें तोजो
घरके-सामने और तुम्हारी नजर में अपराध किया है और अब तुम्हारा
पुतर चोवाजाई लायक नाय।" पण पे पिंढजें मुलइएके चें " खासे में
पुत्र कहाने योग्य नहीं। पर पिताने अपने नौकर को कहा सुन्दर से
खासो वगो गिनी अचो अनें से इनके परायोस; अनें इनजे हथमें वींढी
सुन्दर वस्त्र ले आओ और वे इसको पहनाओ; अब इसके हाथमें अंगुठी
अने पग में जोड़ो पेरायोस; अने पाण ख्यों नें राजी थिओं;
और पाँव में जूती पहनाओ; और अपने खाएँ और प्रसन्न होवें;

कुरे - ला के ई मूंजो पुतर मरी व्यो हुओ से पाऊं जीरो थ्यो अय;
क्यों–कि यह मेरा पुत्र मर गया था वह पीछे जीवित हुआ है;

से वेंधी यो हुओ नें लझी आयो अय, पोय से खुसी करण लगा।
वह जा रहा था और मिल आया है, पीछे वे खुशी करने लगे।

इन संण इनजो वडो पुतर खेतरमें हुओ; त्यांनूं से जेडो आयो
इस समय इसका बड़ा पुत्र खेतमें था; वहाँ से वह आया

अनें घर अगिआ पोंतो तेंडो इन गावो, नाच सोंएं तडें तें मुलइए के
और घरके आगे पहुँचा तो उसने गाना, नाच सुना तब उन नौकरों

मिंझानूं हिकड़े के सड करी पुछेंज - हो मिड़े कु - लाय थिये तो ?
मेंसे एक को बुला कर पूछा कि-यह सब किस लिए होता है ?

ते इनके च्यो - तोजो भा आयो अय, अनें तोजे पे खावो कें
उसने इसको कहा-तुम्हारा भाई आया है, और तुम्हारे पिताने भोजन किया

अय, कुरे - ला ज से इनके सजो निरुबो जुड्यो अय; तडें ई
है, क्यों- कि वह इसको सारा स्वस्थ मिला है तब यह

लोठो अनें मिंझ विञणजो मन न कें । एतरे ला इनजे पे बार
रूठा और अन्दर जाने का मन(इरादा) न किआ इसलिए इसके पिताने बाहर

अंची नें इनजी अजीजूं कें ! तडें ते जभाभ डिनें ज "पे ! हितरा मिड़े
आकर इसकी मिन्नत कीं। तब उसने जवाब दिया कि-पिताजी ! इतने सब

वरे थ्या आऊँ तोजी चाकरी कंधो आयो अयां, अने तोजो सुकन
वर्ष हुए मैं तुम्हारी नौकरी करता आया हूँ, और तुम्हारा बचन

कड़े पण उथलायो नाय, त पण तो मूंके केनीं ह्किडे बकरीजे बचे
कभी भी लौटाया नहीं, तब भी तुमने मुझको कभी एक बकरीके बचे
जेतरो पण डिनें नांय; जें नूं आऊँ मुंजे भाइबंधें भेरो मजा करिआं,
जितना भी दिया नहीं, जिससे मैं अपने भाई बंधुओंके पास मजा करूँ,
पण इन तो जे पुतर तो जी मिडे मिल्कत रनें में भरभाद कें। से
पर इस तुम्हारे पुत्रने तुम्हारी सब मिल्कियत राण्डोंमें बरबाद की। वह
जेडो आयो तेडोज तो इनला खावो कें। तडें तें तिनके च्यो ज–
पास आया तब ही तुमने इसकेलिये भोजन किया। तब उमने उससे कहा कि-
पुतर तूं तां हंमेस मूं भेरोज थ्यो अईएं, मुंजो जिकी अय से मिडे
पुत्र तुम तो हमेशा मेरे पासही हुआ(रहा)है, मेरा जो भी है वह सब
तो जो ज अय, पाण ख्यों पिओं नें खुसी करिओंई पांके लाजम
तुम्हारा ही है. स्वयं खाएँ-पिएँ और खुशी करें यह अपनेको योग्य
हुओ, कु - लाज ई तो जो भा मरी व्यो हुओ से पांऊं जीरो थ्यो
था, क्यों कि यह तुम्हारा भाई मर गया था वह पीछे जीवित हुआ
अय, अने वेंधी यों हुओ से लधो अय।
है, और जाता रहा था वह मिला है।

(लिं० स० इ०, भा० ८)

—–—

संख्या २—

असां - जा मन - मिठा महमान

(हमा - रे मन - मधुर मेहमान)

असाँ - जा मन - मिठा महमान,
हमारे मन — मधुर महमान
मन - मिठा महमान आँ - खे कच्छ डिए - थो मान।
मन—मिठे महमान तुम-को कच्छ देता— है मान।

१. अज अवाँ - जे साथ आवइ सिन्ध सजीअ - जे शान
आज तुमलोगोंके साथ आई सिंध सारी—की शान
कराचीअ—जे कमनसीबीअ, कच्छ थिओ बलवान।
करा्चा — के कमनसीबीसे कच्छ हुआ बलवान

२. मिठा माड़ू मिठे मन - साँ मिठा डीँदा मान जे।
मधुर मनुष्य मधुर मन— से मधुर देंगे मान जा
मिठप - में वेन्दा मिली अईँ मिठप - जा महमान।
मधुरता-में जाएँग मिल तुम मधुरता के मेहमान

३. नवलखी किथ सिन्ध अवाँजी किथि मिठो महराणजे
नवलखी कहाँ सिन्ध तुमलोगों की कहाँ मीठा दरिया
भले आया भावर मूँहिँ -जा कच्छ किसिमत साण
भले आये भाई मेरे कच्छ की किस्मत के साथ

४. मिठी धरती कच्छ - जी अइँ मिठा अईँ महमान
मधुर पृथ्वी कच्छकी और मधुर तुम मेहमान
काराणी चे कच्छडो थीन्दो मिठो महराण।
काराणी कहता हैं कच्छ होगा मधुर दरयाह

श्री दुलेराय काराणी

(हिन्दुवासी-साप्ताहिक-सिन्धी मुंबई. ७-३ १९५४)

लासी–सिन्धी

बलोचिस्तान के लसबेलो की पूर्व सीमा कराची जिला के साथ मिलने के कारण, लाड़ी-सिंधी का लासीपर प्रभाव स्पष्ट दृग्गोचर होता है। जैसे —

१. यहाँ पदमें से प्रायः 'ह' का लोप कर देते हैं- 'बाहिरि' को 'बारि' कहेंगे। परंतु गाल्हि और हमेश का 'ह' नहीं निकाला है।

२. प्रायः ग, ज, ड, द और ब का क्रमशः घ, झ, ढ, ध और भ के स्थानपर आदेश करते हैं। जैसे–

घरु को गरि और नंढो को नंडो आदि कहते हैं। परंतु कहीं कहीं मुंडी (= मुद्रिका) को मुंडी और घाटो को घाटो भी कहते हैं।

३. प्रायः 'थ' को 'छ' में परिवर्तित करते हैं। जैसे-

वि. सिं. गुमु थी वियो' को लासी सिं. में- "गुमु छो वियो"। वि. सिं. "जियरो थियो आहे" को ला.सिं. में "जियरो छो आहे", वि सिं. के "हेतिड़ा साल थियनि" को ला. सिं. में-"हेतिरा साल छनि" आदि कहते हैं। परंतु वि. सिं. के 'थो' क्रियापद के स्थानपर क. सिं. के समान 'तो' का ही प्रयोग करते हैं।

लिंग और वचन :

लासी में माण्हूँ (= मानवः) का स्त्री लिंग 'माण्ही' होता है। सिंधी के बाकी भेदोंमें इसका रूप 'माई' होता है।

लासी में ब०व०में 'आँ' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—पेर का पेराँ और पोरिह्यत का पोरिह्यताँ आदि। सिराइकी सिंधी में भी ब०व०में 'आँ' प्रत्यय जोड़ा जाता है। यह ऊपर कह आये हैं। मराठी में भी ब०व०में 'आ' प्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे - टोप्या, सतरंज्या आदि।

सर्वनाम:—

वि. सिं. के 'हुन' का लासी सिंधी में - 'हुव' रूप होता है। परंतु बोल-चालमें 'हुव' के 'हु' का भी लोप कर देते हैं, शेष 'व' रह जाता है। जैसे- "व जो पुट्ट" (= हुन जो पुट्ट, उसका पुत्र) वि. सिं. के इहो (= यह) का लासी में 'एहो' रूप होता है। किंतु बोल चाल में अलेफ़ का लोप हो जाता है, शेष 'यहो' रह जाता है। जैसे - "यहो माँजो पुट्ट छे" (इहो मुहिंजो पुट्ट थिए, यह मेरा लड़का होना है) सं. 'अस्' धातु की जगहपर 'छे' का प्रयोग गुजराती और बंगलामें भी मिलता है (गु० 'छे', बं० अश् छे)। इतने सुदूर प्रांतों के क्रियापदकी समानता भाषातत्वज्ञों के लिये कुतूहल-जनक तथा विचारणीय विषय है। यही बात मराठी और सिंधी के विषयमें भी कही जा सकती है, जो गुजराती के 'छे' और राजस्थानी के 'है' क्रियापदोंको लांघकर दोनोंमें 'आहे' समानार्थ रूपमें व्यवहृत

है। अस्तु।

कहीं कहीं 'यूहो' का 'यूह' रूप बन जाता है। जैसे " यूह जो मतलबु छो ?" (= इन्हीअ जो मतलबु छा ?, इसका मतलब क्या ?)। यहाँ लासी ' यूहो ' हिन्दी के ' यह ' से समानता रखता है।

सिंधी के अन्य भेदों में ' छा ' (= कि) यह प्रश्नबोधक शब्द है। परंतु लासीमें इसके ' छो ' और ' छे ' रूप होते हैं। ' छो ' का उदाहरण ऊपर दिया है। बाकी ' छा लाइ ' को कहेंगे ' छे लाइ ' (= किस लिये ?)

" वछिँयँ वेठे, सूर विया छे सुहिणो ?"।

शा. सुहिणी ४।१३॥

क्रियापद:—

सिंधीमें उ० पु०, ए० व० में ' आँ ' और ' आँसि ' प्रत्यय लगाते हैं। परंतु लासीमें इनके रूप ' एँ ' और ' एँसि ' होते हैं। जैसे वि. सिं. के " आऊँ उथी घरि थो वञाँ " को लासी में कहेंगे " आँ उथी गरि तो वञेँ " (= मैं उठकर घरको जाता हूँ)। इसप्रकार ' करियाँ ' को ' करेँ ' (= करूँ) और ' चवाँसि ' को ' चवेँसि ' आदि कहते हैं '

अव्यय:—

लासी में ' जदहिँ ' (= यदा) को ' जर ' और ' तदहिँ ' को ' तर ' (= तदा) कहते हैं। जैसे - लासी - " जर अञाँ

गाटो दूरि हो, तर वञी पुटखे पसी मंझि वञी न पतरियो" (= वि. सि. जदहिँ अञाँ घणो दूरि हो तदहिँ वञो पुटखे पसी अंदरि न वियो)। ठीक मराठी में भी इसी अर्थ में 'जर' और 'तर' के रूप मिलते हैं।

प्रत्यय:—

लासी	वि. सि.
गरि	वटि (पास)
गराँ	वटाँ (से)
सेँ	साँ (साथ)
नूँ	खाँ (से)

उदा० "थोड़का दीहँ नँ पोइ" अर्थात् "थोड़नि दीहँनि खाँ पोइ" (थोड़े दिनों के बाद)।

यह 'नूँ' प्रत्यय सिराइकी में और गुजराती में भी मिलता है।

लासी	वि. सि.
पाद	दे, दाँहँ (तरफ)

उदा० "ऊ इकरे दूरि मुल्क पादि वियो" अर्थात् "हू हिकिड़े दूराहँ मुल्क दाँहँ वियो" (वह एक दूर देश को गया)।

लासी - सिंधी के कुछ अपने शब्दः

लासी में कुछ ऐसे शब्द हैं जो प्रायः सिंधी के अन्य भेदों में प्रयुक्त नहीं होते। उनके कुछ उदाहरण - 'लिंग्विस्टिक् सर्वे ऑफ़ इण्डिया' से नीचे दिये जाते हैं:

लासी	वि. सिं.	
उगारणु	खरिचणु खपाइणु	(खर्च करना)
घाटो	घणो	(बहुत)

उदा० "व खे घाटो चुपिटियो" अर्थात् 'हुनखे चंबुरियो' ('उसको बहुत चिपट गया')।

——

जिला कराची की लासी सिन्धीका हिन्दी-शब्दानुवाद सहित नमूना

हेकड़े माण्हे - जा ब पुटु हुआ। तिन - माँ नन्ढे पाँ - जे पे - खे
एक मनुष्य - के दो पुत्र थे। उन - मेंसे छोटेने अपने पिता को
चयो - " ए अबा! माल - माँ जे - का पती माँ - जी छे सा माँ -
कहा - " हे पिता! माल - मेंसे जो हिस्सा मेरा - हो वह मुझको
खे दे " हू पाँ - जे मालु हुनि - खे विराहे दिनो थोरी काँ दीहाँ
दो " उसने अपना माल उन - को बाँट दिया थोड़ेही दिनों
नूँ पोइ, नन्ढे पुट सभि गदु करे हेकड़े - दूरँ - मुल्क -
के बाद छोटा पुत्र सब इकठा कर एक - दूर - देश -
पादि - विओ। तिते पाँ - जो मालु लफंगाईअ - में विञाए छादि
को गया। वहाँ अपना माल, बदचलन में गँवा दिया।
आँईं जर सभि, उगारी आँईं ते गराँ पोइ ति मुल्क-मेँ
और जब सब गँवा दिया उस-के बाद उस देशमें
दाढो दुकारु अची पिओ व - जो - गुजरान तंग छण लगो। नए
बहुत दुष्काल आ पड़ा उसका गुजारा तंगीमें होने लगा। उस
मुल्क - जे हेकड़े बैठकुअ - खे वञी चापिड़िओ
देश - के एक रहवासी - को जा चिपटा।

अँइ हू पाँ - जे बनीअ - में सुवराँ - जे चारण बिहारिओ।
और उसे अपनी खेती - में सूअरों-के चरानेके लिए खड़ा किया।

जे - के कख सुवराँ ते खाधा, से हुबअ - सेँ खाई पाँ - जो पेटु
जो तृण सूअर थे खाते, वे प्रेम - से खाकर अपना पेट
भरे, पर के दिनों की - न । जर हू पाण संभाल की तर चयाँईं
भरता पर किसीने दिया नहीं । जब स्वयं उसने संभाल की तब कहा
त, माँ - जे पे - जे केतिराँ पोरियताँ - गर घाटी मानी खाण लाइ
कि. मेरे पिताके कितने नौकरों के पास बहुत रोटी खानेके लिए
आहे, आँइ हू ओंबारे बि सघनि - था; आँ बुख थो मरे । आँ
है, और वह बचा भी सकते - हैं; मैं भूखा हूँ मरता । मैं
उठी प - गर तो - वञेँ, वञीँ - तो चवीँ इ "ए अबा !
उठ पिताके पास हूँ - जाता, जाकर कहता हूँ "हे पिता !
आँ अल्लाह - त आला - जो तो - जो दुहारी आहे हाणि आँ
मैं अल्लाह ताला का तुम्हारा भी अपराधी हूँ अब मैं
लाइक नाहीं जो तो - जो पुट चवाँ, सो माँ - खे पाँ - जे पगार्वोराँ
लायक नहीं जो तुम्हारा पुत्र कहाऊँ सो मुझको अपने पगारदार
- पोरियताँ - माँ हेकड़ो करे झालि." पोइ हू उठी पाँ - जे पे -
नौकरों मेंस एक कर रखो" पीछे वह उठ अपने पिता-
पादि विओ । पर अञाँ घाटो दूरि हो त पे व - खे पसो - वतो ।
के पास चला । पर अभी बहुत दूर था तो पिताने उस-को देख- लिया
व - खे महर पेई । आँइ हू डोरी विओ; आँइ गिराथिऊँ विझो,
उस-को दया आई । और वह दौड़ गया; और अलिंगन कर,
चुमिआँईँसि तर पुट चयो, " अबा ! आँ अल्लाह - त आला
चूमा तब पुत्रने कहा, " हे पिता ! मैं अल्लाह - ताला

-जो दुहारो आहे ँ आँइ तो-जो बि। आँ लाइक् नाहीं जो
–का अपराधी हूँ और तुम्हारा भी। मैं योग्य नहीं जो
तो-जो पुट्ु चवी। पर व-जे पेपाँ-जे पोरियताँ-खे चयाँई ँ
तुम्हारा पुत्र कहाऊँ। पर उस–के– पिताने अपने नौकरोंको कहा
त बिल् कुल् -खाशो वेसु खणी-अचो, आँइ विझोसि आँइ
कि बिलकुल उत्तम वेश ले आओ, और पहनाओ और
हथ-में मुन्डी विझोसि आँइ पेराँ-मे ँ जुती विझोसि। अचो, त
हाथ–में अंगूठी पहनाओ और पाँव– में जूती पहनाओ। आओ, तो
खावायाँ ँ आँइ खुशिऊँ कर्याँ ँ, छेलाइ जो यिहो माँ-जो पुट्ु मरी-
खाएँ और खुशी करें, क्यों कि यह मेरा पुत्र मर
विओ-हो, आँइ वरी जिअरो छो-आहे; हू गुम छी-विओ-हो,
गया – था, और फिर जीवित हुआ है; वह गुम हो–गया था,
आँइ वरी लधो आहे। आँइ हू खुशिऊँ करण लगा।
और फिर मिला है। और वे खुशियाँ करने लगे।

व-जो वदो पुट्ु बनीअ-में हो सो जर् आओ, आँइ
उस–का बड़ा पुत्र खेती – पर था सो जब आया, और
घर् -खे ओदो आओ, त हो रागु् बुधो आँइ रान्द दिठी, तर
घर – के पास आया, तब उसने गाना सुना और खेल देखा, तो
हूअ हेकड़े-पोरियत-खे घराए पुछिओ त, 'येह् -जो मत्लब
उसने एक – नौकर – को बुलाकर पूछा कि, 'इस – का मतलब

छो ? हूअ चयोसि तो - जो भाऊ आओ - आहे, आँइ तो -जे
क्या ? उसने कहा तुम्हारा भाई आया है, और तुम्हारे
पे शादमानी की - आहे, छ - लाई जो हूअ - खे अरो'
पिताने खुशी की है; क्यों कि जो उस को ऐसा
सलामत अची गदिओ - आहे। वखे कावड़ि लगी। मंझि वञो
स्वस्थ आ मिला है। उसको गुस्सा लगा। अन्दर जाकर
न पुत्रिओ, ताँइ - लाई व - जे पे बार अचो व - खे मिनथ
न पहुँचा; उस -लिए उसके पिता ने बाहर आ उस-को मिन्नत
कियाँइ, हूअ वरन्दोअ - में पे-खे चयो त, पसु हेतरा साल
को उसने जवाब में पिताको कहा की, देखो इतने साल
छाने त आँ तो-जी बानप पिओ-करें; कदाहें बि तो-जे
हुए तो मैं तुम्हारी नौकरी रहा हूँ-कर, कभी भी तुम्हारे
आगोतिआँ वरिओ नाहीं तरि तो कदाहें बि माँ खे हेकड़ो
आगेसे लौटा नहीं तब तुमने कभी भी मुझको एक
बकरु बि न दिनो जो आँ पाँ-जे बेलिउनि - साँ खुशिऊँ करें
बकरा भी न दिया जो मैं अपने नौकरोंके साथ खुशियाँ करूँ
पर येहो तो-जो मालु कस्बिअ-में विञायो-आहे, अचो पुनो-
पर इस तुम्हारे पुत्रने माल रण्डिओं में गवाँया है, आ पहुँचा
आहे, तो व-लाइ शादमानी की आहे तर चयाँइसि पुट !
है, तो उसके लिए खुशी की है तो (उसने) कहा पुत्र !

तूँ हमेश माँ–गर आहें ! जे–की माँ–गर आहे सो सभि तो–
तू हमेशा मेरे साथ है। जो भी मेरे पास है वह सब तुम्हारा
जो आहे; इहा गाल्हि लाइक आहे, जो असीं खुशिऊँ कयों,
है. यह बात योग्य है. जो हम खुशियाँ करें,
सरहा छाँ; छे–लाइ जो यिहो तो–जो भाउ मो हो, सो वरी जीअरो
आनन्दित हों; क्यों कि जो यह तुम्हारा भाई मरा था, वह फिर जीवित
थो आहे; आँइ गुम छी–विओ–हो, आँइ लधो–आहे।
हुआ है. और गुम हो–गया था, और मिला है।

(लिं० स० इं०, भाग ८)

चतुर्थ परिच्छेद

सिन्धी - भाषाकी अरबी - सिन्धी लिपि

सिन्धी–भाषा की वर्तमान लिपिका नाम 'अरबी–सिन्धी' है। इस लिपिके प्रचलनसे पूर्व अर्थात् सिन्धु पर अंग्रजोंके शासन–काल से पहले प्रायः हिन्दू पुरुष देवनागरी - लिपि काम में लाते थे व्यापारी वर्ग (हिन्दू और मुसलमान - मेमुण, बोरी तथा खोजा) ब्राह्मी-लिपिका ही परिवर्तित रूप हिन्दू-सिन्धी अर्थात् हट-वाणिको - लिपि व्यवहार में लाते थे। मुसलमान और कुछ सरकारी - कर्मचारी हिन्दू, फ़ारसी - लिपि काम में लाते थे। हिन्दू-स्त्रियाँ गुरुमुखी-लिपि व्यवहार में लाती थीं।

सन् १८५३, में ईस्ट - इण्डिया - कम्पनी के निर्णयानुसार उस समय के सिन्धु के असिस्टेन्ट - कमिश्नर श्री. एलिस की अध्यक्षता में सिन्धु के हिन्दू तथा मुसलमान विद्वानों की एक कमिटी बनी, जिसने 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा' वाली कहावतके अनुसार कुछ अरबी - लिपि के और कुछ फारसी

लिपि के वर्ण लेकर एक तीसरी ही विचित्र लिपि निर्माण की, जिसका नाम रखा 'अरबी - सिन्धी - लिपि'। इस में ५१ अक्षर संगृहीत किये गये हैं। इस लिपि में यदि थोड़ा भी ध्वनि - विज्ञान का सहारा लिया जाता तो कितने ही वर्ण कम हो सकते थे। जैसे - क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, और ब वर्णों में यदि 'ह' का चिन्ह मिलाया जाता तो क्रमसे ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ वर्ण बन सकते थे। परन्तु अरबी - सिन्धी लिपि में इन व्यंजनों के भिन्न भिन्न चिह्न नियत करने से लिपि में व्यर्थ की वृद्धि की गई है। इस लिपि में सब से विशेष न्यूनता यह है कि - शब्दोंमें स्वर - चिह्न न देने के कारण एक-एक शब्द के अनेकों उच्चार किये जा सकते हैं। जैसे - मीम् (म्), टे (ट्) में स्वर - चिह्न न देने पर मट, मिट, मुट, मट्ठ, मिट्ठ, मुट्ठ, माटे, मिटि और मुटि ये अनेक उच्चार हो सकते हैं। इस लिए कभी सुज्ञ आदमी भी पढ़ते समय अशुद्ध उच्चार कर बैठता है। आज जब देवनागरी-लिपि में सिन्धी - भाषाके लिखने का विचार हो रहा है तब उसके शब्दों के ठीक - ठीक उच्चार करने का प्रश्न सामने आता है, जिसका मूल कारण यह विकृत लिपि है। वस्तुतः सिन्धी शब्दों के सही उच्चारण के निर्णयके लिए हम लोगोंको प्राकृत और अपभ्रंश - भाषाओं का ही सहारा लेना होगा, जिनसे यह भाषा निकली है।

सिन्धीके कुछ अपने वर्ण

सिन्धी - भाषा में ग, ज, ड, द, और ब व्यंजनों का अपने स्थान से उच्चार करने के सिवाय अघोष उच्चार भी होता है आपि-शली - शिक्षा में कहा है कि– " ग - ज - ड - द - बा: कण्ठोरस्या: "आ० शि० (VI. 7.) इस ध्वनिको सूचित करने के लिए सिन्धी - देवनागरी - लिपि में इन व्यंजनों के नीचे आड़ी लकीर खींच दी जाती है। जैसे, ग, ज, ड, द, और ब । शेष स्वर और व्यंजन जो अरबी और फारसी से आकर सिन्धी - भाषा में घुल - मिल गये हैं, उनके लिए वे ही चिह्न रखने चाहिए जो हिन्दी - लिपि (देवनागरी) में नियत किये गये हैं। जैसे, अ़ (ऐन्), क़ (क़लम), ख़ (ख़च्चर), ग़ (ग़रीब), ज़ (ज़ालिम), फ़ (फ़ानूस), और ह़ (ह़बिशी)।

वास्तव में इन में कई वर्ण हैं जो वैदिक और लौकिक - संस्कृत में आये हैं। श्री पाणिनि मुनिने "कुप्वा: ≍ क ≍ पौ च" अ.८। पा. ३। सू. ३७। इस सूत्र में 'कु' अर्थात् क, ख,ग, घ, और ङ, के आगे (≍) यह चिह्न देने पर उसको जिह्वामूलाय (Glottal) बताया है, जो अरबी में क़, ख़ और ग़ के रूप में विद्यमान है. परन्तु घ़ और ङ़ का कैसे उच्चार होता होगा कुछ कहा नहीं जाता। इस प्रकार 'पु' अर्थात् - प, फ, ब, भ और म के आगे भी (≍) यह चिह्न लगाने पर उनको उपध्मानीय

कहा है। उन में से केवल 'फ़' वर्ण अरबी और फारसी में मिलता है बाकी के चार वर्णों (प़, ब़, भ़, और म़) का कैसे उच्चार होता होगा कुछ मालूम नहीं। माहेश्वर - चतुर्दश - सूत्रों में 'ह-य-व-र-ट्', तथा चोदहँवा सूत्र 'हल्' में ह-कार का उल्लेख है। वैयाकरणोंने इन दोनों सूत्रों में आये हुए 'ह' का केवल प्रत्याहार बनाने में ही उपयोग माना है। परन्तु प्रथम आये हुए हकार का 'य-व-र' के साथ उल्लेख होने से वह अर्ध-स्वर ही होना चाहिए, और अन्तिम 'ह' व्यंजन है। इस प्रकार ऋक्-प्रातिशाख में 'ड' के तीन उच्चार बताये हैं। जैसे ड़, ळ, और हकार का योग होनेपर 'ढ़' (ऋ. प्रा. प. १।२॥)। होता है।

दक्षिण - सिन्धु में शब्द का अन्तिम स्वर संवृत हो जाता है। जिसको बताने के लिए श्री ग्रियर्सन् ने उसको ऊपर चढ़ाया है; जैसे पुट^{उ}, लठइ, आदि। परन्तु मैंने इस पुस्तक में स्वर के पीछे हलन्त का चिह्न दे कर बताया है; जैसे पुट्टु्, लठि्, पीउ्, पोइ्।

सिंधी - भाषाका सामान्य व्याकरण

शब्द भेद:—

शब्द के आठ भेद हैं - (१) संज्ञा (२) सर्वनाम (३) विशेषण (४) क्रिया (५) क्रिया - विशेषण (६) संबंध-सूचक (७) समुच्चय-बोधक (८) विस्मयादि - बोधक। इनमें से पहले चार परिवर्तनशील

हैं अतः उन्हें विकारी शब्द कहते हैं और अन्तिम चार शब्द अपरिवर्तनशील हैं अतः उन्हें अविकारी शब्द अथवा अव्यय कहते हैं।

यह ध्यानमें रहे कि सिन्धी-भाषा में कोई भी शब्द हलन्त नहीं है। सभी शब्द स्वरान्त हैं। यहाँ अब हम प्रत्येक शब्द के विषय में लिखते हैं।

संज्ञाः—

वस्तु का नाम सूचित करनेवाले शब्द को व्याकरण में 'संज्ञा' कहते हैं।

संज्ञा के पाँच भेद हैं (१) व्यक्तिवाचक (२) जातिवाचक (३) समूहवाचक (४) द्रव्यवाचक (५) भाववाचक।

(१) व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper Noun):—यह संज्ञा किसी एक ही प्राणी अथवा पदार्थ का नाम सूचित करती है। जैसे कराची, हिमालय, गंगा, रामु (राम) आदि।

(२) जातिवाचक संज्ञा (Common Noun):-यह संज्ञा एक ही जाति के सब प्राणियों या पदार्थों का नाम सूचित करती है। जैसे नदी, जबलु (पर्वत), माण्हू (मनुष्य), शहरु (शहर), घोड़ो (घोड़ा) आदि।

(३) समूह वाचक संज्ञा:—(Collective Noun) यह संज्ञा प्राणियों या पदार्थों के समूह का नाम बताती है। जैसे सभा, कुटुंबु(कुटुंब), संघु (संघ), झुंडु (झुंड) इत्यादि।

(४) द्रव्यवाचक संज्ञा (Material Noun):- यह संज्ञा राशि या ढेर के रूप में पाई जानेवाली वस्तु का नाम सूचित करती है। जैसे सोनु (सोना), चाँदी, पाणी (पानी), अनाजु (अनाज), आदि।

(५) भाववाचक संज्ञा (Abstract Noun):-यह संज्ञा गुण, दशा अथवा व्यापार का नाम बताती है। जैसे मिठो (मीठा), नरमु (नरम), दोस्ती, आलिसु (आलस्य), डोड़ (दौड़), वहुक (बहाव) आदि।

संज्ञा का लिंग:—

सिन्धी भाषा में संज्ञा के दो लिंग हैं। पुरुष - जाति - बोधक संज्ञाओं को व्याकरण में पुल्लिंग कहते हैं तथा स्त्री - जाति - बोधक संज्ञाओं को स्त्री-लिंग कहते हैं।

प्राचीन सिन्धी (लगभग २०० वर्ष पूर्व) में नपुंसक - लिंग की संज्ञाएँ भी पाई जाती हैं। वहाँ संस्कृत अकारन्त नपुंसक लिंग के शब्दों का 'अम्' प्रत्यय 'ऊँ' में परिवर्तित मिलता है। जैसे-

जे हू पाईन कानु कमान में, त नईं दिजि सीनूँ।
[यदि वे रखें तीर कमान पै, तो नम्र हो देना सीना]
कजे न कीनूँ, वञी दरि दोस्तनि जे ॥
[करना न चाहिए कीना, जाकर दर पै दोस्तों के]

शाह जो रसालो, सुर यमन कल्याण।

वर्तमान सिन्धी में ये 'सीनूँ' तथा 'कीनूँ' शब्द 'सीनो' तथा 'कीनो' में परिवर्तित होकर पुल्लिंग संज्ञाएँ बन गए हैं। इसी तरह संस्कृत के नपुंसक लिंग की और भी संज्ञाएँ सिन्धी में अधिकांश में पुल्लिंग तथा कभी-कभी स्त्रीलिंग बन जाती हैं। जैसे:- घरु (घर), पनु (पर्ण), हींओ (हृदय) आदि पुल्लिंग हैं, पर ढाल (सं० ढालम्) स्त्रीलिंग है।

पुल्लिंग संज्ञाएँ:–

संस्कृत में सभी अकारान्त संज्ञाएँ प्राय: पुल्लिंग हैं, वे प्राकृत में प्राय: ओकारान्त और अपभ्रंश में उकारान्त बन जाती हैं। सिन्धी में भी इनके ओकारान्त, उकारान्त तथा कभी कभी ऊकारान्त रूप मिलते हैं। जैसे - रामु, रामो, रामू (राम); गोबिन्दो, गोबिन्दु, (गोविन्द); गोपु, गोपू (गोप); किशिनु, किशिनो (किशन) आदि।

स्त्रीलिंग संज्ञाएँ:–

संस्कृत के आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का सिन्धी में भी बहुधा उसी ही स्वर में अन्त होता है। जैसे गंगा, जमुना, लछिमी (लक्ष्मी), मति, नीति, वहू (वधू) आदि। कहीं-कहीं अन्त्य-स्वर में परिवर्तन भी हो जाता है। जैसे ससु (श्वश्रू), धीउ (दुहितृ), माउ (मातृ), वेल (वेला) आदि।

संज्ञाओं का लिंग – निर्णय:–

संज्ञा के अन्त्य स्वर को ध्यान में रखकर संज्ञा का लिंग निश्चित करते हैं। सिन्धी में संज्ञाओं का अन्त निम्नलिखित सातस्वरों में होता है, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ। ये स्वर कभी कभी सानुनासिक भी होते हैं।

(१) अकारान्त संज्ञाएँ हमेशा स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे:- खट (खाट), जिभ (जीभ), बाँहँ (बाँह), दाँहँ (चिल्लाहट, शिकायत), सूँहँ (शोभा) आदि।

(२) आकारान्त, इकारन्त तथा ईकारान्त संज्ञाएँ बहुधा स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे:- बला (नागिन), दुआ, पूजा; मखि (मक्खी), राति (रात्रि), कपहि (कपास), घोड़ो [घोड़ा], बिली (बिल्ली), चाँदी आदि। अपवाद-महात्मा, राजा, दाता, खुदा; सेठि (सेठ), मिसिरि (मिश्र); पाणी (पानी), हाथी, साईं (स्वामी) आदि।

(३) उकारान्त तथा ऊकारान्त संज्ञाएँ प्राय: पुलिंग होती हैं; जैसे घरु (घर) ज़ोरु (जोर), चोरु (चोर), मुँहुँ (मुख) डींहुँ (दिवस); माण्हू (मनुष्य), मिरूँ (पशु), विछूँ (बिच्छु); दारूँ (शराब, आतिशबाज़ी) आदि। अपवाद:—मसु (स्याही) विजु (विद्युत) खँडु (खाँड); आबरू, गऊ (गौ) आदि।

(४) ओकारान्त संज्ञाएँ हमेशा पुंलिंग होती हैं, जैसे:- घोड़ो (घोड़ा), कुतो (कुत्ता), इरादो (इरादा), महिनो (महीना) दूँहोँ (धूम), सूँहोँ (मार्गदर्शक) आदि।

पुंलिंग से स्त्रीलिंग बनाने के नियम:—

[१] उकारान्त पुंलिंग संज्ञाएँ:

(क) 'इ' लगाने से-जैसे:- कुकुरु (मुर्गा)-कुकुरि, गदहु (गधा) गदहि, छोकरु (लड़का) - छोकरि।

(ख) ई ,, ,, जैसे झिर्कु-झिर्की (चिड़िया), बकरु (बकरा)-बकिरी, छोकरु (छोकरा) - छोकिरी।

(ग) णि ,, ,, जैसे शींहुँ (सिंह) - शींहणि, सराफु (सराफ) सराफिणि, जतु (ऊँट चरानेवाला) जतिणि।

(घ) याणी ,, ,, जैसे नोकरु (नौकर) नोकियाणी, माइटु, (ज्ञाति, मीत) - माइट्याणी, बाँभणु (ब्राह्मण) - बाभिण्याणी।

(२) ऊकारान्त पुँलिंग संज्ञाएँ : ऊकारान्त संज्ञाओं का प्राय: स्त्रीलिंग रूप नहीं होता है।

एक उदाहरण है हिन्दू - हिन्दुआणी।

(३) ओकारान्त पुँलिंग संज्ञाएँ:—

(क) ई लगाने से–जैसे राणो (राजा)–राणी, घोड़ो (घोड़ा) घोड़ी, कुतो (कुत्ता)–कुती, छोकिरो (छोकरा)-छोकिरी।

(ख) याणी ,, ,, –जैसे लंघो (जातिविशेष)–लंघ्याणी, बरोचु (जातिविशेष)-बरोच्याणी।

(४) ईकारान्त पुँल्लिंग संज्ञाएँ:

(क) याणी लगाने से-जैसे खटी [धोबी]-खट्याणी, हाथी-हाथ्याणी।

(ख) इणि लगाने से-जैसे धोबी-धोबिणि, हाथी-हाथिणि।

(५) इकारान्त पुंलिंग संज्ञाएँ जैसे:- सेठि-सेठ्याणी, मिसिर-मिसिर्याणी।

(६) आकारान्त पुंलिंग संज्ञाओं के प्रायः स्त्रीलिंग नहीं बनते हैं। ऐसी कुछ संज्ञाओं के यदि स्त्रीलिंग बनते भी हैं तो अन्तिम स्वर में परिवर्तन करने से नहीं बनते, परन्तु दूसरा कोई शब्द उनका स्त्रीलिंग होता है; जैसे राजा-राणी, पिता-माता आदि।

ऐसे कुछ और पुंलिंग शब्द जिनका स्त्रीलिंग शब्द दूसरा है:— पीउ [पिता]-माउ [माता], घोटु [दूल्हा]- कुंआरि [दुलहिनि], ढाँढु, ढगो [बैल] - गाँइ [गाय], सहुरो [ससुर] - ससु [सास] आदि।

: संज्ञा का वचन :—

संज्ञा के जिस रूपसे संख्या का ज्ञान होता है उसे वचन कहते हैं। सिन्धी में वचन दो हैं—एक वचन तथा बहुवचन। संस्कृत के द्विवचन का बोध जिस तरह प्राकृत तथा अपभ्रंश में बहुवचन से ही होता है उसी तरह सिन्धी में भी है। यही बात प्रायः भारत की सभी आधुनिक भाषाओं में पाई जाती है।

एक वचन से बहु वचन बनाने के नियम :—

(१) अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं का अन्तिम 'अ' निकाल कर 'ऊँ' लगाने से बहुवचन बनता है; जैसे - ज़ाल (औरत) - ज़ालूँ, खट (खाट) -खटूँ। पर उत्तर सिन्धुवाले बहुधा 'आँ' लगाकर बहुवचन बनाते हैं; जैसे खट - खटाँ ज़ाल - ज़ालाँ, खारिक - खारिकाँ आदि।

(२) आकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में 'ऊँ' लगाकर बहुवचन बनाते हैं; जैसे गिला (निन्दा) - गिलाऊँ, दवा - दवाऊँ आदि। आकारान्त पुंलिंग शब्द या तो बहुवचन में, अन्त में 'ऊँ' लेते हैं या अपरिवर्तित रहते हैं; जैसे राजा - राजाऊँ या राजा, देवता - देवताऊँ या देवता।

(३) इकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द बहुवचनमें अन्तिम स्वर का लोप कर 'यूँ' लेते हैं; जैसे छिति (छत)-छित्यूँ, अखि (आँख) - अख्यूँ, कुसी -कुस्यूँ, बिली (बिल्ली) - बिल्यूँ आदि।

इकारान्त पुंलिंग संज्ञाएँ भी इसी नियम का अनुसरण करती हैं या तो अपरिवर्तित रहती हैं; जैसे सेठि (सेठ) - सेठ्यूँ या सेठि।

ईकारान्त पुंलिंग संज्ञाएँ एक वचन तथा बहु वचन में समान रहती है; जैसे हाथी - हाथी, पखी [पंछी] - पखी आदि।

(४) उकारान्त पुंलिंग संज्ञाओं के 'उ' का परिवर्तन बहुवचन में 'अ' में होता है; जैसे घरु - घर, चोरु - चोर आदि। पर उकारान्त स्त्री लिंग शब्दों का बहुवचन में रूप 'उ' का लोप कर 'ऊं' लगाने से बनता है; जैसे मसु (स्याही) - मसूँ; तन्दु (तन्तु) - तन्दूँ।

(५) ऊकारान्त पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग संज्ञाएँ बहुवचन में अपरिवर्तित रहती हैं; जैसे माण्हू (मनुष्य) - माण्हू, गऊ (गौ) - गऊँ आदि।

(६) ओकारान्त संज्ञाओं के अन्तिम 'ओ' को निकालकर बहुवचन में 'आ' लगाते हैं; जैसे घोड़ो - घोड़ा, कुतो-कुता आदि।

कुछ ऐसी भी संज्ञाएँ हैं जिनका बहुवचन अनियमित है; जैसे भाउ (भाई) - भाउर, भेणु (बहन) - भेनरु या भेणूँ; पीउ (पिता) - पीउर, नुँहुँ (स्नुषा) - नुँहूँ या नुहरु इत्यादि।

संज्ञा का कारक:—

'संज्ञा वा सर्वनाम के जिस रूपसे उसका संबंध क्रिया वा दूसरे शब्द के साथ सूचित किया जाता है, उसे कारक कहते हैं। कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के साथ जो अक्षर अर्थात् चिह्न लगाए जाते हैं उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं।'

सिन्धी में आठ कारक होते हैं जिनके नाम और विभक्तियाँ नीचे लिखी जाती हैं:-

कारक	विभक्तियाँ
(१) कर्ता (Nominative)	—
(२) कर्म (Accusative)	खे (को), डे, (ओर)
(३) करण (Instrumental)	साँ (से)
(४) संप्रदान (Dative)	खे (को), लाइ (के लिए)
(५) अपादान (Ablative)	खाँ (से), ताँ (पर से), माँ (में से)
(३) संबंध (Genitive)	जो (का), जे, जा (के), जी, जूँ (की)
(७) अधिकरण (Locative)	में (में), ते (पर)
(८) संबोधन (Vocative)	ए, अरे

[सिन्धी वैयाकरण करण, संप्रदान, अपादान तथा अधिकरण को एक ही कारक के अन्तर्गत मानते हैं। अतः उनके अनुसार पाँच कारक हैं।]

कारकों के लक्षण: —

(१) कर्ता - कारक संज्ञा (वा सर्वनाम) के उस रूपको कहते हैं जिससे क्रिया के कर्ता का बोध होता है; जैसे, 'रामु' डोड़े थो (राम दौड़ता है)।

(२) जिस वस्तु पर क्रिया का फल पड़ता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा (वा सर्वनाम) के रूप को कर्म-कारक कहते हैं, जैसे रामू 'अंबु' खाए थो (राम आम खाता है)।

(३) करण-कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे साधन का बोध होता है; जैसे, राम रावण खे 'तीरनिसाँ' मार्यो (रामने रावण को तीरों से मारा)।

(४) जिस वस्तु के लिए क्रिया की जाती है उसे सूचित्त करने-वाला संज्ञा का रूप संप्रदान - कारक कहलाता है; जैसे, राजा 'ब्राह्मणनि खे' धनु दिनो (राजा ने ब्राह्मणों को धन दिया)।

(५) अपादान-कारक संज्ञा का वह रूप है जिससे क्रिया का अलगाव पाया जाता है; जैसे 'वण ताँ' फलु किर्यो [वृक्ष से फल गिरा]।

(६) संज्ञा के जिस रूपसे उसका संबंध दूसरे शब्दों के साथ सूचित होता है उसे संबंध - कारक कहते हैं; जैसे 'राम जो' घरु (राम का घर)। सिन्धी में भी संबंध कारक की विभक्तियाँ हिन्दी की तरह संबंधी - शब्द (विशेष्य) के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलती हैं, पर उनमें स्त्रीलिंग बहु वचन में भी विभक्ति

में परिवर्तन होता है जो हिन्दी में नहीं होता। सिन्धी में विभक्त्यन्त संबधा - शब्द के लिए भी संबंध-कारक की अलग विभक्ति हैं; जैसे

राम जो घोड़ो - राम का घोड़ा।

राम जा घोड़ा - राम के घोड़े।

राम जी टोपी - राम की टोपी।

राम जूँ टोप्यूँ - राम की टोपियाँ।

राम जे घर में - राम के घर में।

(७) अधिकरण - कारक संज्ञा के उस रूपको कहते हैं जिससे क्रिया का आधार सूचित होता है; जैसे 'लोटे में' पाणी आहे (लोटे में पानी है)।

(८) संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारने या चेतना का बोध होता है उसे संबोधन - कारक कहते हैं; जैसे 'हे राम' हेदाँह अचु (हे राम इधर आ)। संबोधन - कारक का संबंध क्रिया अथवा किसी दूसरे शब्द से नहीं होता, इसको कोई विभक्ति भी नहीं है, इसलिए इसके पहले कोई एक विस्मयादि - बोधक लगा दिया जाता है।

--संज्ञाओं की कारक - रचना--

कारक - विभक्तियों के पहले संज्ञाओं के रूप में जो परिवर्तन होता है, वह यहाँ दिया जाता है:-

अकारान्त ज़ाल (स्त्री०) — औरत

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता तथा संबोधन	ज़ाल	ज़ालूँ
कर्म से अधिकरण तक	ज़ाल	ज़ालुनि

आकारान्त दवा (स्त्री०) - दवा

कर्ता तथा संबोधन	दवा	दवाऊँ
कर्म से अधिकरण तक	दवा	दवाउनि

आकारान्त राजा (पुं.) - राजा

कर्ता तथा संबोधन	राजा	राजा या राजाऊँ
कर्म से अधिकरण तक	राजा	राजाउनि

इकारान्त अखि (स्त्री.) - आँख

कर्ता तथा संबोधन	अखि	अख्यूँ
कर्म से अधिकरण तक	अखि	अख्युनि

इकारान्त सेठि (पुं.) - सेठ

कर्ता तथा संबोधन	सेठि	सेठ्यूँ या सेठि
कर्म से अधिकरण तक	सेठि	सेठ्युनि

ईकारान्त दरी (स्त्री.) - खिड़की

कर्ता तथा संबोधन	दरी	दर्यूँ
कर्म से अधिकरण तक	दरीअ	दर्युनि

ईकारान्त हाथी (पुं.) - हाथी

कर्ता	हाथी	हाथी
कर्म से अधिकरण तक	हाथीअ	हाथ्युनि
संबोधन	हाथी	हाथ्यो

उकारान्त मसु (स्त्री.)-स्याही

कर्ता तथा संबोधन	मसु	मसूँ
कर्म से अधिकरण तक	मसु	मसुनि

उकारान्त पुटु (पुं.) - पुत्र

कर्ता	पुटु	पुट
कर्म से अधिकरण तक	पुट	पुटनि
संबोधन	पुट	पुटो

ऊकारान्त वहू (स्त्री.) - वधू

कर्ता	वहू	वहू
कर्म से अधिकरण तक	वहूअ	वहुनि
संबोधन	वहो	वहुओ

ऊकारान्त माण्हू (पुं.) - मनुष्य

कर्ता तथा संबोधन	माण्हू	माण्हू
कर्म से अधिकरण तक	माण्हूअ	माण्हुनि

ओकारान्त घोड़ो (पुं.) - घोड़ा

कर्ता	घोड़ो	घोड़ा
कर्म से अधिकरण तक	घोड़े	घोड़नि
संबोधन	घोड़ा	घोड़ो

यहाँ 'ज़ाल' संज्ञा का विभक्तियों सहित सभी कारकों में रूप दिया जाता है, उसी तरह अन्य संज्ञाओं के भी रूप उनके उपरिलिखित रूपों में विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं—

ज़ाल - (स्त्री.) - औरत

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	ज़ाल	ज़ालूँ
कर्म	ज़ालखे	ज़ालुनि खे
करण	ज़ालसाँ	ज़ालुनि साँ
संप्रदान	ज़ाल खे, ज़ाल लाइ	ज़ालुनि खे, ज़ालुनि लाइ
	ज़ाल ज लाइ	ज़ालुनि ज लाइ
अपादन	ज़ाल खाँ-ताँ-माँ	ज़ालुनि खाँ-ताँ-माँ
संबंध	ज़ाल जो-जा-जे-जी-जूँ	ज़ालुनि जा-जा-जे-जी-जूँ
अधिकरण	ज़ाल में-ते	ज़ालुनि में-ते
संबोधन	ए ज़ाल	ए ज़ालूँ

इन सभी संज्ञाओं के रूपों को देखने से मालूम होगा कि इन के रूपों में जो परिवर्तन होता है वह कर्मकारक से लेकर अधिकरण कारक तक समान है। चार संज्ञाओं को छोड़कर बाकी संज्ञाओं के संबोधन - कारक के रूप कर्ता - कारक के रूपों के समान हैं।

—सिन्धी की कुछ विभक्तियोंकी विशेषता—

सिन्धी के अपादान और अधिकरण कारक की यह विशेषता है कि वे बिना विभक्तियों के भी अपना अर्थ स्पष्ट कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में केवल शब्द के आन्तिम स्वर में कुछ परिवर्तन किया जाता है; जैसे,

अविकृत रूप:-घरु (घर) — घराँ या घरूँ (घर से)
,, ,, गोठु (गाँव) — गोठाँ या गोठूँ (गाँव से)
,, ,, नकु (नाक) — नकाँ (नाकसे)
,, ,, घरु (घर) — घरि (घरमें)
,, ,, पटु (ज़मीन) — पटि (ज़मीन पर)
,, ,, बेल (समय) — वेलि या वेले (समयपर या में)

घरूँ, गोठूँ, नकूँ के विकल्पसे घरऊँ, गोठऊँ तथा नकऊँ रूप भी मिलते हैं। अधिकरण-कारक में जो 'इ' और 'ए' शब्द के अन्त में मिलते हैं, वैसे संस्कृत में भी हैं, जैसे रामे (राम में,पर), फले (फल में, पर), भगवति (भगवान में, पर), राजनि या राज्ञि (राजा में, पर) आदि परन्तु सिन्धी में ऐसे बहुत कम शब्द हैं जो अपादान तथा अधिकरण में इस तरह रूप लेते हैं।

सर्वनाम (Pronoun)—

'सर्वनाम उस विकारी शब्दको कहते हैं जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञाके बदले में आता हैं।' सिन्धी भाषामें निम्नलिखित छः सर्वनाम हैं :-

(१) पुरुषवाचक सर्वनाम (Personal Pronoun)
(२) निश्चयवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronoun)
(३) अनिश्चयवाचक सर्वनाम [Indefinite Pronoun]

[४] निजवाचक सर्वनाम [Reflexive Pronoun] [५] संबंध-वाचक सर्वनाम [Relative Pronoun] तथा नित्यसंबंधी सर्वनाम [Co-Relative pronoun] [६] प्रश्नवाचक सर्वनाम [Interrogative Pronoun].

[१] पुरुषवाचक सर्वनाम [The personal Pronoun] उसे कहते हैं जो बोलनेवाले अथवा सुननेवाले के नाम के बदले आता है। बोलनेवाले के नाम के बदले आनेवाले 'माँ' [मैं], 'असीं' या 'असाँ' [हम] सर्वनाम को 'उत्तम पुरुष' और सुननेवाले के नाम के बदले आनेवाले 'तूँ' [तू], 'तव्हीं', 'अव्हीं', [तुम, आप] सर्वनामों को 'मध्यम पुरुष' कहते हैं। जिसके बारे में बातचीत करते हैं उसे 'अन्यपुरुष' कहते हैं, जैसे 'हू' [वह]। उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष को छोड़कर शेष सर्वमाम अन्यपुरुष में कहलाते हैं। सब संज्ञाएँ भी अन्य पुरुष में रहती हैं।

पुरुषवाचक सर्वनामों की कारक-रचना इस प्रकार है :—

उत्तम पुरुष 'माँ' [मैं]

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	माँ, आऊँ [आँ*]मूँ (हिं. मैंने)	असीं, असाँ [हिं. हमने]
कर्म	मूँ खे [माँ खे]	असाँखे [असाँहिं खे]

* सर्वनामों के वे रूप जो प्राचीन सिन्धी में हैं और आधुनिक साहित्यिक सिन्धीमें नहीं हैं, अथवा प्रादेशिक भेदों के कारण हैं, वे कोष्टक में दिये गये हैं।

करण	मूँ साँ [माँ साँ, आँ साँ]	असाँ साँ [असाँहिँ साँ, असाँहूँ साँ]
संप्रदान	मूँखे, मूँ लाइ, मुँहिँजे लाइ	असाँखे, असाँ-, असाँज-लाइ
अपादान	मूँ खाँ-ताँ-माँ [मूँहाँ, माँ खाँ]	असाँ खाँ-ताँ-माँ
संबंध	मुँहिँजो [मूँहूँजो, मूँहिँजो, मूँजो, आँजो]	असाँजो [असाँहिँजो]
अधिकरण	मूँ-में ते	असाँमें-ते

मध्यम पुरुष 'तूँ' [तू]

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तूँ, तो [= तूने]	तव्हीँ, अव्हीँ, (तवोँ, तहीँ तईँ, अवोँ, अहीँ, आँईँ, अँईँ)
कर्म	तोखे	तव्हाँखे, अँव्हाँखे,
करण	तो साँ	तव्हाँ साँ, [तहाँ साँ] अव्हाँ साँ [अहाँ-, आँ-साँ]
संप्रदान	तो खे, तो लाइ, तुँहिँजे लाइ	तव्हाँखे, अव्हाँखे तव्हाँ लाइ, अव्हाँ लाइ, तुहिँजे लाइ, अव्हाँजे लाइ
अपादान	तो-खाँ-ताँ-माँ	तव्हाँ खाँ,-ताँ,-माँ अव्हाँ खाँ,-ताँ,-माँ
संबंध	तुँहिँ जो (तुँहुँ जो, तो जो)	तव्हाँजो (तव्हाँहिँ जो) अव्हाँजो (अवाँहिँ जो, आँहिँ जो)
अधिकरण	तो में,-ते	तव्हाँ में,-ते; अव्हाँ में,-ते

अन्यपुरुष 'हू' (वह)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हू (हो, ऊ, ओ) (पुं.) हूअ (ऊअ, ऊ) (स्त्री)	हू (हो, हूइ, ओइ, होइ)
कर्म	हुनखे (उन-, हू-, हुअ-खे)	हुननि खे (उननिखे)
करण	हुनसाँ (उनसाँ)	हुननि साँ (उननि-, हुनि, उनि-साँ) (हुनों-साँ, जोर देने के लिए)
संप्रदान	हुनखे, हुन लाइ	हुननि खे, हुननि लाइ
अपादान	हुन खाँ (हुनाँ, हुनहाँ, उनाँ)	हुनान खाँ (उननि खाँ)
संबंध	हुन जो (उनजो)	हुननि जो (उननि जो)
अधिकरण	हुन में-ते (उनमें-ते)	हुननि में-ते (उननि में-ते)

नोट:—इन सभी रूपों में प्रादेशिक भेदों के कारण 'हु' का 'उ' में परिवर्तन होता है। अन्य पुरुष - सर्वनाम - के कर्ता कारक के एक वचन के सिवाय अन्य सभी कारकों में पुरुषवाचक सर्वनाम स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग में समान होते हैं।

[२] निश्चयवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronoun)

जिस सर्वनाम से वक्ता के पास अथवा दूर की किसी वस्तु का बोध होता है उसे निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे, हीउ (पुं.) हीअ (स्त्री.) = यह; इहो (पुं.), इहा (स्त्री.) = यही। हू (पुं.), हूअ (स्त्री.) = वह; उहो (पुं.), उहा (स्त्री.) = वही। इन सर्वनामों की कारक रचना इस प्रकार है:—

निकटवर्ती, 'हीउ' (पुं.) तथा 'हीअ' (स्त्री.) = यह

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हीउ (हिउ, ही, हे) (पुं.) हीअ (हिअ, ही, हे) (स्त्री.)	ही (हे)
कर्म	हिन खे (ही खे)	हिननि खे (हिनि-, ही-,हे-,खे)
करण	हिन साँ	हिननि साँ (हिनिसाँ)
संप्रदान	हिन खे, हिन लाइ, हिनजे लाइ	हिननि खे, हिननि लाइ हिनानि जे लाइ
अपादान	हिन खाँ-ताँ-माँ, (हिनाँ)	हिननि खाँ (हिनि खाँ)
संबंध	हिन जो	हिननि जो (हिनि जो)
अधिकरण	हिन में-ते	हिननि में-ते (हिनि में-ते)

नोटः—इन सभी रूपों में प्रादेशिक भेद के कारण 'हि' का 'इ' रूप भी होता है।

निकटवर्ती 'इहो' (पुं), 'इहा' (स्त्री.) = यही

कारक	एक वचन	बवहुचन
कर्ता	इहो, ईहो (इओ, ईओ, एहो) (पुं.) इहा, ईहा (इआ, ईआ) (स्त्री.)	इहे
कर्म	इन्हे खे, इन्हीअ खे	इन्हनि खे
करण	इन्हे साँ, इन्हीअ साँ	इन्हनि साँ
संप्रदान	इन्हे खे इन्हे लाइ, इन्ह जे लाइ इन्हीअ खे, इन्हीअ लाइ, इन्हीअ जे लाइ	इन्हनिखे इन्हनि लाइ इन्हनि जे लाइ

अपादान	इन्हे या इन्हीअ खाँ-ताँ-माँ	इन्हनि खाँ-ताँ-माँ
संबंध	इन्हेजो, इन्हीअ जो	इन्हनि जो
अधिकरण	इन्हे या इन्हीअ में-ते	इन्हनि में-ते

नोट—कर्म से लेकर अधिकरण तक विभक्ति लगाने के पूर्व एक-वचन में 'इन्ही' और 'इनिह' तथा वहुवचनमें 'इन्हिनि' तथा 'इन्हें' रूप भी होते हैं।

दूरवर्ती 'हू' (पुं.) 'हूअ' (स्त्री) = वह

इसका रूप पुरुषवाचक सर्वनाम 'हू' की तरह ही होता है।

दूरवर्ती 'उहो' (पुं.) 'उहा' (स्त्री.) = वही

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	उहो उओ) (पुं.)	उह
	उहा (उआ) (स्त्री.)	
कर्म	उन्हे ख, उन्हीअ ख	उन्हनि खे
करण	उन्हे साँ, उन्हीअ साँ	उन्हनि साँ
संप्रदान	उन्हेखे, उन्हीअ खे	उन्हनि खे, उन्हनि लाइ
	उन्हे लाइ उन्हीअ लाइ	
	उन्हे ज लाइ, उन्हीअ जे लाइ	उन्हनि जे लाइ
अपादान	उन्हे या उन्हीअ-खाँ-ताँ-माँ	उन्हनि खाँ-ताँ-माँ
संबंध	उन्हे जो, उन्हीअ जो	उन्हनि जो
अधिकरण	उन्हे में—ते, उन्हीअ में-ते	उन्हनि में-ते

नोट:-कर्म से लेकर अधिकरण तक विभक्ति लगाने के पूर्व एक वचन में 'उनीह' तथा बहुवचन में 'उन्हिनि' तथा 'उन्हें' रूप भी होते हैं।

निश्चयवाचक सर्वनाम भी कर्ता-कारक के एक वचन को छोड़कर शेष कारकों में पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग में समान होते हैं।

उपरिलिखित निश्चयवाचक सर्वनामों के सिवाय दो और भी निश्चयवाचक सर्वनाम हैं 'इझो' (यही) तथा उझो (वही) पर इन की कारक रचना नहीं होती। ये केवल लिंग और वचन में बदलते हैं। जैसे,

एक वचन	बहुवचन
इझो (पुं.) इझा (स्त्री.)	इझे (पुं. तथा स्त्री.)
उझो (पुं.) उझा (स्त्री.)	(उझे) (,, ,, ,,)

(३) अनिश्चयवाचक सर्वनाम (Indefinite Pronoun) जिस सर्वनाम से किसी विशेष वस्तु का बोध नहीं होता उसे 'अनिश्चयवाचक सर्वनाम' कहते हैं। अनिश्चयवाचक सर्वनाम दो हैं—को (कोई), की (कुछ)। 'कोई' मनुष्य या बड़े प्राणी के लिए और 'की' पदार्थ या धर्म के लिए आता है। 'को' की कारक रचना होती है, पर 'की' अव्यय है। 'की' के दूसरे रूप 'कुछ' तथा 'कुझु' भी हैं।

'को' (पुं.) तथा 'का' (स्त्री.) = कोई

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	को (पुं.) का (स्त्री.)	के
कर्म	कँहि खे	किनि खे (कनि खे)
करण	कँहि सां	किनि साँ, (कनि साँ)

संप्रदान	कँहिँ खे, कँहिँ लाइ कँहिँ जे लाइ	किनि खे (कनि खे), किनि लाइ (कनि लाइ किनि जे लाइ (कनि जे लाइ)
अपादान	कँहिँ खाँ-ताँ-माँ	किनि खाँ - ताँ - माँ (कनि खाँ - ताँ - माँ)
संबंध	कँहिँ जो	किनि जो, (कनि जो)
अधिकरण	कँहिँ में-ते	किनि में - ते, (कनि में - ते)

इस सर्वनाम के कर्म से लेकर अधिकरण के बहुवचन के, रूपों में किनानि, किनिन, किन्हनि किन्हिनि रूप भी मिलते हैं।

इन 'को', 'का' तथा 'की', 'कुछ', 'कुझु' सर्वनामों में अन्य शब्दों के जोड़ने से निम्नलिखित रूप भी बनते हैं:—

को - को या का - का (कोई), सभुको या सभुका (सब-कोई) हरको या हरका (हर - कोई), ब्यो - को या बी - का (दूसरा - कोई या दूसरी - कोई), को - न - को या का - न - का (कोई न कोई), सभु - की या सभु - कुछु या सभु कुझु (सब कुछ), ब्यो-कुछु (और - कुछ), की - कीन (कुछ नहीं), कुछु - न कुछु, कुझु न कुझु, (कुछ न कुछ), कुछु जो कुछु या कुझु जो कुझु (कुछका कुछ), इत्यादि ।

'को' तथा 'का' को 'ई' लगाने से भी रूप बनते हैं । जैसे कोई (पुं.) काई (स्त्री.) (एक वचनमें); तथा केई, कई, कँई (बहुवचन में) ।

[४] निज वाचक सर्वनाम (Reflexive Pronoun)

वाक्य में पहले आई हुई संज्ञा वा सर्वनाम की चर्चा के लिए जो सर्वनाम आता है, उसे निजवाचक सर्वनाम कहते हैं। सिंधी में ऐसे सर्वनाम हैं पाण, खुदु, पिन्डि। इन में से अन्तिम दो अव्यय हैं और प्रायः क्रिया-विशेषण की तरह काम में आते हैं। ('पिन्डि' केवल लाड़ और कच्छ में बोला जाता है)। 'पाण' दोनों लिंगों में समान है और उसकी कारक रचना एक वचन तथा बहुवचन में समान है।

पाण ['आप' निजवाचक]

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	पाण, पाणु	—
कर्म	पाणखे	—
करण	पाणसाँ	—
संप्रदान	पाण खे, पाण लाइ	—
	पँहिँ जे लाइ	—
अपादान	पाण खाँ [पाणाँ]	—
संबंध	पाँहिँ जो, पँहँ जो [पाँहँ जो, पाँजो]	—
अधिकरण	पाण में - ते	—

पाण-से बननेवाले कुछ शब्द-पाणही [क्रि. वि. अपने आप], पाणेही [क्रि. वि. अपने आप ही - अधिक ज़ोर देने के लिए], पाणमुरादो [अपने आप], पाण भरो [दूसरे पर आधार न रखनेवाला], पाणभरू

[केवल अपना पेट भरनेवाला, स्वार्थी] पाण हुरितो या पाणहुरितिड़ यो [अपनी मतिवाला, मनमानी करनेवाला], पँहिँजो - पाण [अपने - आप]

[५] संबंध - वाचक सर्वनाम (Relative Pronoun) तथा नित्यसंबंधी सर्वनाम (co-Relative Pronoun).

संबंध - वाचक सर्वनाम दूसरी संज्ञा या सर्वनाम से संबंध रखता है और साथ-साथ दो वाक्यों को मिलाता भी है। जो, जेको [पुं.] जा, जेका [स्त्री.], ऐसे सर्वनाम हैं। 'सो' इस के उत्तर में आता है तथा उससे हमेशा संबंध रखता है, अतः वह नित्य - संबंधी सर्वनाम कहलाता है। उदा० .'छोकिरे वटि किताबु आहे 'जो [जेको]' हुनखे इनाम में मिल्यो हो।' [लड़के के पास पुस्तक है जो उसे इनाम में मिली थी]। किताबु 'जो' काल्ह मूँ गिधा सो सुभाणे तोखे दीँदुसु। [किताब जो कल मैंने खरीद की, वह कल तुम्हें दूँगा] इत्यादि। 'जो' का दूसरा रूप 'जेकी' (जो कुछ) भी है जो अव्यय है।

जो (= हिंदी जो)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो (पुं.) जा (स्त्री.)	जे
कर्म	जँहिँ खे	जिनि खे
करण	जँहिँ साँ	जिनि साँ
संप्रदान	जँहिँ खे, जँहिँ लाइ	जिनि खे, जिनि लाइ,
	जँहिँ जे लाइ	जिनि ज लाइ।

अपादान	जँहि ँखाँ - ताँ - माँ	जिनि - खाँ - ताँ - माँ
संबंध	जँहि ँजो	जिनिजो
अधिकरण	जँहि ँमें - ते	जिनि में ते ।

इसके सिवाय कर्म से लेकर अधिकरण तक विभक्ति के पहले बहुवचन में जनि, जिन्हनि जिन्हिनि, जिननि,, जिनिनि, जनी रूप भी होते हैं जो प्रादेशिक भेदों के कारण हैं तथा प्राचीन सिंधी में मिलते हैं ।

जेको (= हिं. जो, जो कोई)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जेको (पुं.) जेका (स्त्री)	जेके
कर्म	जँहि ँ कँहि ँखे	जिनि किनि खे
करण	जँहि ँ कँहि ँ साँ	जिनि किनि साँ
संप्रदान	जँहि ँ कँहि ँखे,	जिनि किनि खे
	जँहि ँ कहि ँ लाइ	जिनि किनि लाइ
अपादान	जँहि ँ कहि ँ खाँ	जिनि किनि खाँ
संबंध	जँहि ँ कँहि ँ जो	जिनि किनि जो
अधिकरण	जँहि ँ कँहि ँमे-ते	जिनि किनि में-ते

सो (= हिं. सो, वह)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सो (पुं.), सा (स्त्री.)	से
कर्म	तँहि ँखे	तिनिखे
करण	तँहि ँसाँ	तिनिसाँ

संप्रदान	तँहिं खे, तँहिं लाइ तँहिं जे लाइ	तिनि लाइ
अपादान	तँहिं खाँ-ताँ-माँ	तिनि खाँ-ताँ-माँ
संबंध	तँहिंजो	तिनि जो
अधिकरण	तँहिं में - ते	तिनि में - ते

'सो' के कर्म से लेकर अधिकरण तक बहुवचन में विभक्ति के पहले तनि, तिननि, तिनिनि, तिन्हनि, तिन्हिनि, रूप भी होते हैं।

(६) प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronoun)

प्रश्न करने के लिए जिन सर्वनामों का उपयोग होता है, उन्हें 'प्रश्न वाचक' सर्वनाम कहते हैं। जैसे केरु [कौन], कहिड़ो [कौन तथा कौन-सा], छा [क्या], कुजाड़ो [क्या]। 'केरु' केवल मनुष्यों के लिए आता है, 'कहिड़ो' मनुष्य, वस्तु, तथा क्रिया (काम) के लिए आता है, और 'छा' या 'कुजाड़ो' केवल वस्तु तथा काम के लिए आता है।

केरु (कौन)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	केरु (पुं.), केर (स्त्री.)	केरि

'केरु' के शेष कारकों के रूप अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'को' की तरह होते हैं।

कहिड़ो (कौन, कौनसा) (पुं.)

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	कहिड़ो	कहिड़ा

कर्म	कहिड़े खे	कहिड़नि खे
करण	कहिड़े साँ	कहिड़नि साँ
संप्रदान	कहिड़े लाइ-खे	कहिड़नि लाइ-खे
अपादान	कहिड़े खाँ-ताँ-माँ	कहिड़नि खाँ-ताँ-माँ
संबंध	कहिड़े जो	कहिड़नि जो
अधिकरण	कहिड़े में-ते	कहिड़नि में-ते

कहिड़ी (कौन, कौन-सी) (स्त्री.)

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	कहिड़ी	कहिड़यूँ
कर्म	कहिड़ीअ खे	कहिड़्युँनि खे
करण	कहिड़ी अ साँ	कहिड़्युनि साँ
संप्रदान	कहिड़ीअ खे-लाइ	कहिड़्युनि खे-लाइ
अपादान	कहिड़ीअ खाँ-ताँ माँ	कहिड़्युंनि-खाँ-ताँ-माँ
संबंध	कहिड़ीअ जो	कहिड़्युनि जो
अधिकरण	कहिड़ीअ में-ते	कहिड़्युनि में-ते

	छा (क्या)		कुजाड़ो (क्या)	
कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	छा	—	कुजाड़ो	—
कर्म	छाखे	—	कुजाड़े खे	—
करण	छासाँ	—	कुजाड़े साँ	—
संप्रदान	छा खे, छा लाइ	—	कुजाड़े लाइ-खे	—

अपादान	छा खाँ-ताँ-माँ	—	कुजाड़े खाँ-ताँ-माँ	—
संबंध	छा जो	—	कुजाड़े जो	
अधिकरण	छा में-जो	—	कुजाड़े में-ते	

'छा' लिंग, कारक तथा वचन में समान रहता है। 'कुजाड़ो' लिंग तथा वचन में समान रहता है केवल कारक रचना में उसका रूप विकृत होता है।

सार्वनामिक प्रत्यय (The Pronominal Suffixes)

जिस प्रकार संज्ञाओं की पुनरावृत्ति दूर करने के लिए सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार सर्वनामों की पुनरावृत्ति रोकने के लिए ये प्रत्यय पुरुषवाचक सर्वनामों के बदले प्रयुक्त होते हैं। इतना ही नहीं, ये प्रत्यय और कार्य भी करते हैं; जैसे भाषा की सुन्दरता को बढ़ाना, भाषा की अस्पष्टता को दूर करना, भाषा की समाहार तथा समास शक्तिको बढ़ाना, इत्यादि। ये प्रत्यय सिन्धी भाषा की एक मुख्य विशेषता हैं। [1]यह प्रवृति काश्मीरी भाषा को छोड़कर सम्भवतः भारतीय अन्य भाषाओं में नहीं मिलती। काश्मीरी भाषा में भी यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल नहीं जितनी सिन्धी

---

1. The use of these suffixes constitutes quite a peculiar feature of the Sindhi language and distinguishes it very advantageously from all the kindred idioms of India, which are destitute of pronominal suffixes.

Dr. Trumpp: Sindhi Grammar, pp. 225.

में है, क्यां कि सम्भवत: भारतीय भाषाओं में केवल सिन्धी भाषा ही है जिस में ये प्रत्यय फारसी तथा पश्तोकी तरह संज्ञा, संबंध सूचक, तथा क्रियापदों के अन्त में लगते हैं। ये प्रत्यय इस प्रकार हैं :—

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मि	ऊँ, सूँ
मध्यम पुरुष	इ, ए, ई	व
अन्य पुरुष	सि, आईं या आइ	नि, आऊँ या आउ

इन में से ई, सूँ, आईं या आइ, आऊँ या आउ, केवल क्रियापद के अन्त में आते हैं।

(1) संज्ञाएँ:-ये प्रत्यय संबंध दिखानेवाली संज्ञाओं के अन्त में आकर पुरुषवाचक सर्वनामों के संबंध कारक का अर्थ देते हैं। ऐसी कुछ संज्ञाएँ हैं—दादो (दादा) दादी (दादी), धीउ (दुहिता), पुटु (पुत्र), भाउ (भाई) भेणु (बहन), माउ (माता), पीउ (पिता), ससु (सास), सहुरो (श्वशुर), नुँहँ (स्नुषा) नानी, नानो (नाना) इत्यादि।

उदाहरण:—दादुमि (मेरा दादा), दादमि (मेरे दादा को, से, का, पर-भेणमि (मेरी बहन), पुटऊँ (मेरे पुत्र), दादुइ तेरा दादा), भाणे (तेरा भाई), पुटव (तेरे पुत्र), माणसि (उसका माता), दादसि (उसका दादा) दादसि (उसके दादा को, से, का, पर) भाणुसि (उसके भाई), भाउरनि (उनके भाई), इत्यादि।

अन्य संज्ञाओं के साथ इनका प्रयोग अब नहीं होता है।

(२) क्रियापदों के उदाहरण

चयुमि = मैं ने कहा (धातु चवणु, सं. वच्), चऊँ = हम कहें। हून्दासूँ = हम होंगे [धातु हुअणु]। चवन्दोसाँइ = मैं तुझे कहूँगा, चवन्दोसाँव = मैं तुम सब से कहूँगा [धातु चवणु]। हुजेई = तुझे हो, हुजेव = तुम सब को हो [धातु हुअणु]। आयुइ = वह तेरे पास आया; अयुव = वह तुम सब के पास आया [धातु अचणु, सं. अञ्च्]। वियोसाँसि = मैं उसके पास गया [धातु वञणु - सं. व्रज्], वियोसानि = मैं उनके पास गया। मारियाइ या मारियाईं = [उसने] उसको मारा; मारियाउ या मारियाऊँ = [उन्होंने] उन सब को मारा [धातु मारणु - सं. मृ], इत्यादि।

इनि प्रत्ययों की दूसरी विशेषता यह भी है कि एक ही क्रियापद से कर्ता तथा कर्म दोनों का बोध ये प्रत्यय करा सकते हैं। जैसे—

मारियोमाँसि = मैं ने उसको मारा (धातु मारणु - मारना)
मारियाईंमि = उसने मुझको मारा (,, ,, ,,)

ये प्रत्यय क्रियापदों के अन्त में आकर सभी कारकों का अर्थ भी देते हैं। जैसे,

(१) दिनुमि = मै ने दिया (कर्ता)
(२) न मारींसि = (तू) उसको मत मार (कर्म)
(३) गदिजी वञींसि = (तू) ऊससे (के साथ) जा। (करण)
(४) रुपया दींसि = (तू) उसको रुपये दे। (संप्रदान)

(५) रुपया वठींसि = (तू) उससे रुपये ले। (अपादान)

(६) दोस्तु आह्याँइ = [मैं] तेरा दोस्त हूँ [संबंध]

(७) तेलु विझींसि = उसमें तेल डाल [अधिकरण]

पाणी छो थो विझींमि=मुझपर पानी क्यों डालता है

(८) 'पुटमि'! = हे मेरे पुत्र ! (संबोधन)

[३] संबंध सूचक शब्दों के उदाहरण:—

सन्दो [जो] [हिन्दी का] – सन्दुमि [मेरा], सन्दुसि [उसका] सन्दुनि (उनका)

वटि [को पास] – वटिमि [मेरे पास] वटिसि (उसके पास) वटिनि [उनके पास]

साणु [से, साथ] – साणुसि (उसके साथ) साणुनि [उनके साथ]

खे [को] – खेसि [उसको], खेनि [उनको]

खाँ (से - अपादान) – खाँउसि [उससे], खाँउनि [उनसे]

मे (में) – मँझिंसि [उसमें], मँझिनि (उन में)

यह ध्यान रहे कि जब ये प्रत्यय शब्द के अन्त में आते हैं तब सर्वनाम नहीं आते।

विशेषण (Adjective)—

जिस विकारी शब्दसे संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे विशेषण कहते हैं। विशेषण के द्वारा जिस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे 'विशेष्य' कहते हैं जैसे 'कारो घोड़ो' में 'कारो' (काला) विशेषण है, तथा 'घोड़ो' (घोड़ा) विशेष्य है। उपयोगिता की दृष्टिसे विशेषण के मुख्य तीन भेद किये जाते हैं– (१) गुणवाचक विशेषण (२) संख्यावाचक विशेषण और (३) सार्वनामिक विशेषण।

(१) गुणवाचक विशेषण :–(Adjective of Quality or state)

गुणवाचक विशेषण संज्ञा का गुण या दशा बताते हैं। इनके कुछ मुख्य अर्थ नीचे दिये जाते हैं :–

काल—नओं (नया), पुराणो (पुराना), ताज़ो (ताजा) आदि।

स्थान—डिघो (दीर्घ), वेकिरो (चौड़ा), ऊन्हों (गहरा) आदि।

आकार—गोलु (गोल), चौकुण्डो (चौकोर), सुन्दरु (सुन्दर) आदि।

रंग—पीलो (पीला), साओ (हरा), अच्छो (सफेद) आदि।

दशा—दुबिरो (दुबला), थुल्हो (मोटा), आलो (आर्द्र) आदि।

गुण—भलो (भला), शान्त (शान्त), दानी (दानी) आदि।

(२) संख्यावाचक विशेषण (Numeral Adjective) ये विशेषण संज्ञा की संख्या, क्रम अथवा परिणाम का बोध कराते हैं। संख्या वाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—(१) निश्चित संख्यावाचक, (२) अनिश्चित संख्या वाचक और (३) परिमाण वाचक।

(१) निश्चित संख्यावाचक विशेषण (Definite Numeral-Adjective):- निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के पाँच भेद हैं—(१) गणनावाचक (२) क्रमवाचक (३) आवृत्तिवाचक (४) समुदाय-वाचक और (५) प्रत्येक-बोधक ।

गणनावाचक विशेषण (Cardinals)

गणनावाचक विशेषण दो प्रकार के हैं:—

(अ) पूर्णांक-बोधक, जैसे-हिकु (एक), ब (दो) आदि ।

(आ) अपूर्णांक-बोधक, जैसे-चोथो (पाव), अधु (आधा) आदि ।

(अ) पूर्णांक बोधक गणनावाचक विशेषण

पूर्णांक बोधक विशेषणों के नाम तथा अंक यहाँ दिये जाते हैं—

१ हिकु, हेकु, एकु, हिकिड़ो हेकिड़ो, बर्खु. बर्खतु	११ यारहँ
२ ब, ॿू	१२ बारहँ
३ टे	१३ तेरहँ
४ चारि	१४ चोदहँ
५ पंज	१५ पन्द्रहँ
६ छ, छह	१६ सोरहँ
७ सत	१७ सत्रहँ
८ अठ	१८ अरिड़हँ, अड़िढ़ाँ
९ नव	१९ उणीह, उणिवीह
१० ॾह	२० वीह

२१ एकीह
२२ बावीह
२३ टेवीह
२४ चोवीह
२५ पंज्वीह
२६ छवीह
२७ सतावीह
२८ अठावीह
२९ उणटीह
३० टीह
३१ एकटीह
३२ बटीह
३३ टेटीह
३४ चोटीह
३५ पंजुटीह
३६ छटीह
३७ सतुटीह
३८ अठुटीह
३९ उणेतालीह
४० चालीह
४१ एकेतालीह
४२ बाएतालीह
४३ टेतालीह
४४ चोएतालीह
४५ पंजेतालीह
४६ छाएतालीह
४७ सतेतालीह
४८ अठेतालीह
४९ उणवँजाह (-हु)
५० पंजाह (-हु)
५१ एकवँजाह (,,)
५२ बावँजाह (,,)
५३ टवँजाह (,,)
५४ चोवँजाह (,,)
५५ पंज्वँजाह (,,)
५६ छावँजाह (,,)
५७ सत्वँजाह (,,)
५८ अठ्वँजाह (,,)
५९ उणहठि
६० सठि
६१ एकहठि
६२ बाहठि
६३ टेहठि
६४ चोहठि
६५ पंजहठि
६६ छाहठि
६७ सतहठि
६८ अठहठि

६९ उणहतरि	८५ पंजासी
७० सतरि	८६ छहासी
७१ एकहतरि	८७ सतासी
७२ बाहतरि	८८ अठासी
७३ टेहतरि	८९ उणानवे
७४ चोहतरि	९० नवे
७५ पंजहतरि	९१ एकानवे
७६ छाहतरि	९२ ब्यानवे (बिआनवे)
७७ सतहतरि	९३ ट्यानवे (टियानवे)
७८ अठहतरि	९४ चारानवे
७९ उणासी	९५ पंजानवे
८० असी	९६ छहानवे
८१ एकासी	९७ सतानवे
८२ ब्यासी (बिआसी)	९८ अठानवे
८३ ट्यासी [टिआसी]	९९ नवानवे
८४ चोरासी	१०० सउ (सौ)

सहसु, हज़ारु (हज़ार), लखु (लाख). किराड़ु (करोड़), अर्बु (अर्ब), खर्बु (खर्ब), नीलु [नील] पदमु (पद्म)।

गणनावाचक पूर्णांक-बोधक विशेषणों का प्रयोग:—

(१) 'एक' संख्या–बोधक विशेषण के रूप, लिंग, कारक, और वचन में विशेष्य के अनुसार बदलते हैं। जैसे:-

हिकु या हिकिड़ो छोकिरो (एक लड़का)

हिक या हिकिड़ी छोकिरी (एक लड़की)

हिक या हिकिड़े छोकिरे खे (एक लड़के को)
हिक या हिकिड़ीअ छोकिरीअ खे (एक लड़की को)।

(२) 'एक' के सिवाय अन्य सभी संख्यावाचक विशेषण लिंग तथा कर्ता कारक में अविकृत रहते हैं। दो, तीन, चार के संख्यावाचक विशेषणों के रूप अन्य कारकों में क्रमशः ब॒िनि, टिनि, चइनि होते हैं। पाँच से लेकर अड़तालीस तक के संख्या वाचक विशेषण अन्य कारकों में अन्त में 'नि' लेते हैं और उनचास से लेकर निन्नानवे तक के विशेषण अविकृत रहते हैं। एक और सौ को छोड़कर अन्य सभी विशेषण हमेशा बहुवचन में आते हैं। जैसे—

कर्ताकारक:- ब॒ छोकिरा या छोकिर्यूँ (दो लड़के या लड़कियाँ)
पंज्वीह ,, ,, ,, (२५ ,, ,, ,,)
सउ ,, ,, ,, (१०० ,, ,, ,,)
अन्यकारक:- ब॒िनि छोकिरनि या छोकिर्युनि खे (दो लड़कों या लड़कियों को)
पंज्वीहनि ,, ,, ,, ,, ,, (२५ ,, ,, ,, ,,)
छावँजाह ,, ,, ,, ,, ,, (५६ ,, ,, ,, ,,)
अठहतरि ,, ,, ,, ,, ,, (७८ ,, ,, ,, ,,)

(३) 'हिकिड़ो' (एक) जब बहुवचन में आता है तब उसका अर्थ होता है कुछ। जैसे 'हिकिड़ा छोकिरा हेदाँहँ अचनि· हिकिड़ा होदाँहँ वञनि' (कुछ लड़के इधर आएं, कुछ उधर जाएँ),

जब सउ (सौ) बहुवचन में आता है तब तसका अर्थ होता है 'सैकडो'। जैसे-सवें माण्हू (सैकडों लोग)।

(आ) अपूर्णांक - बोधक गणना -वाचक विशेषण (Fractional Adjectives)

इन विशेषणों से पूर्ण - संख्या के किसी भाग का बोध होता है। जैसे - चोथो, पाउ (चौथाई भाग), अधु (आधा), मुनो या पौणो, पौणा (पौन), सवा (सवा), ड्रेढु [डेढ़] साढ़ा या अढ़ाई (अढ़ाई या ढाई)। इनमें से 'मुनो' प्रायः एक वस्तु के साथ आता है। और उससे अधिक वस्तुओं से 'पौणा' आता है। जैसे पौणा ब (पौने दो), पौणा छह (पौणा छः) वगैरह। 'अढाई' केवल 'दो' से आता है। उससे अधिक वस्तुओं से साढा का प्रयोग होता हैं। जैसे साढा पंज (साढे पाँच) साढा ड्रह (साढ़ दस) आदि।

(२) क्रमवाचक विशेषण (Ordinals)

क्रमवाचक विशेषण से किसी वस्तु की क्रमानुसार गणना का बोध होता है। गणनावाचक विशेषणों के अन्त में पुंलिंग के लिए 'ओ' और स्त्रीलिंग के लिए 'ई' लगाने से ये विशेषण बनते हैं। परन्तु एक, दो, तीन, चार, नौ, साठ और सत्तर इस नियम के अपवाद हैं। जैसे

पुं.			स्त्री.	
पहिर्यों		(पहला)	पहिर्यां	(पहली)
बियो,	बिओ, बियों,	(दूसरा)	बीं, बी	(दूसरी)
टियों	टिओं,	(तीसरा)	टीं	(तीसरी)

(पुं.)		(स्त्री.)	
'चोथों',	(चौथा)	चोथीं	(चौथी)
नाओं	(नौवाँ)	नाईं	(नौवीं)
दहों	(दसवाँ)	दहीं	(दसवीं)
वीहों	(बीसवाँ)	वीहीं	(बीसवीं)
टीहों	(तीसवाँ)	टीहीं	(तीसवीं)
{ सठियों / सठ्यों	(साठवाँ)	{ सठियीं / सठ्यीं	(साठवीं)
{ सतरियों / सतर्यों	(सत्तरवाँ)	{ सतरियीं / सतर्यीं	(सत्तरवीं)
नवेओं	(नब्बेवाँ)	नवेईं	(नब्बेवीं)
सौओं	(सोवाँ)	सौईं	(सौवीं)

इन विशेषणों की कारक-रचना पुंलिंग में ओकारान्त संज्ञाओं तथा स्त्रीलिंग में ईकारान्त संज्ञाओं की तरह होती हैं।

(३) आवृत्तिवाचक विशेषण (Multiplicative)

'आवृत्तिवाचक विशेषण से जाना जाता है कि उसके विशेष्य का वाच्य कै गुना है।' गणनावाचक विशेषणों के अन्त में 'ऊणो' लगा कर ये विशेषण बनाये जाते हैं। दो, तीन, चार अनियामित हैं। जैसे ब्रीणो (दुगुना), टीणो (तिगुना), चऊणो (चौगुना), पंजूणो (पंचगुना), छहूणो (छगुना), सऊणो (सौगुना)।

(४) समुदायवाचक विशेषण (Collective Numerals)

समुदायवाचक विशेषणों से किसी पूर्णांक-बोधक संख्या के समुदायका बोध होता है। जैसे दहाको (दस का समुदाय), वीहारो (बीसका समुदाय), टीहारो (तीस का समुदाय), चालीहारो (चालीस का समुदाय), इत्यादि।

(५) प्रत्येक बोधक विशेषण (Distributive Adjectives)

इस विशेषणसे कई वस्तुओं में से प्रत्येंक का बोध होता है। जैसे—हरघड़ीअ (हरघड़ी), हरहिकु, हरिको माण्हू (प्रत्येक मनूष्य), फी-जुल्दु (प्रत्येक जिल्द)। गणनावाचक विशेषणों की द्विरुक्ति से भी यही अर्थ मिलता है। जैसे हिकु-हिकु छोकिरो (प्रत्येक लड़का) अधु-अधु (आधा-आधा,) इत्यादि।

संख्या से कुछ दूसरे भी रूप बनते हैं, जैसे एको, बिको टिको, चौंको, पंजो इत्यादि। ये संख्या का नाम बताते हैं। हेकर हेकार (एकबार)। बीहर, बीहार, (दो बार), टीहर, टीहार (तीन बार) यह अर्थ बताने के लिये इसके बाद 'वारो', 'भेरो' 'दफा' या 'लिङा' शब्द संख्या के साथ आते हैं। जैसे चारि भेरा (चार बार) चोथों भेरो (चौथी बार), पंज भेरा, वारा, लिङा, दफा (पाँच-बार) पंजोँ भेरो, वारो, लिङो, दफो (पाँचवी बार (इत्यादि।

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण (Indefinite Numeral Adjectives)

जिस संख्यावाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता, उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। निम्न-लिखित ऐसे विशेषण हैं।

हिकु, हिकिड़ो, को (हिकु) 'कोई' के अर्थ में), बियो (अन्य, और के अर्थ में) बियो को (दूसरा कोई), बियो-कुछु (दूसरा कुछ) सभु, सभोई, सभेई (सब), सभुको (सब-कोई), सभु-कुछ (सब-कुछ कुल), (सब), घणेई (बहुत) थोड़ा (थोड़ा), अनेक (अनेक), केतिराई, कई ँ (कई), कुछु (थोड़े), फलाणा (अमुक, फलाँ) इत्यादि।

कोई दो गणनावाचक विशेषण साथ में आकर अनिश्चय सूचित करते हैं; जैसे बिन चइनि दीँहँनि में (दो चार दिन में), दस-बीस, ढाई-तीन, आदि।

सवेँ (सैकड़ो), हजारेँ (हजारों) लखेँ (लाखों) आदि भी आनिश्चित संख्यावाचक विशेषण हैं।

परिमाण वाचक विशेषण बहुवचन में आकर आनिश्चित अर्थ सूचित करते हैं, जैसे सेर खीरु (सेरों दूध), ढेर अनाजु (ढेर अनाज) आदि।

परिमाण-वाचक विशेषण (Quantitative Adjectives)

'परिमाण-बोधक विशेषणों में किसी वस्तु की नाप या तौलका बोध होता हैं' जैसे-सभु, सभोई, मिड़योई (सब), सजो (सारा) समूरा (समूचा), वधीक, घणो, झझो (अधिक) थोड़ो (थोड़ा) ज़रा (जरा) घटि (कम), पूरो (पूरा), इत्यादि।

ये विशेषण प्रायः एक वचन संज्ञा के साथ परिमाण-बोधक तथा बहुवचन संज्ञा के साथ अनिश्चित संख्या सूचित करते हैं जैसे—

घणो सामानु (बहुत सामान) घणा छोकिरा (बहुत लड़के)
अधु धनु (आधा धन) अधु सिपाही (आधे सिपाही)।

(३) ' सार्वनामिक विशेषण (Pronominal Adjectives)

पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़ कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। जब ये शब्द अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है तब ये विशेषण होते हैं; जैसे ' नौकरु आयो आहे। हू बाहिरि बीठो आहे ' (नौकर आया हैं। वह बाहर खड़ा है)। इस वाक्य में ' हू ' सर्वनाम है। पर ' हू नौकर न आयो ' (वह नौकर नहीं आया ')। इस वाक्य में ' हू ' विशेषण है।

सार्वनामिक विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो प्रकार के होते हैं।
(१) मूल सर्वनाम, जो बिना किसी रूपांतर के संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे हीउ घरु (यह घर) हू छोकिरो (वह लड़का) को नौकरु (कोई नौकर) इत्यादि।

(२) यौगिक सर्वनाम, जो मूल सर्वनामों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं और संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे अहिड़ो माण्हु (ऐसा आदमी) कहिड़ो घरु (कैसा घर), ओतिरो कमु (उतना काम) इत्यादि।

आगे के कोष्टक से स्पष्ट होगा कि किस तरह सर्वनामों से परिमाण, आकार तथा प्रकार का बोध करानेवाले विशेषण बनते हैं।

सर्वनाम Pronouu	रूप Base	परिमाण Quantity	आकार Size	प्रकार Kind
निश्चयवाचक		एतिरो	एदो - एदिड़ो	अहिड़ो
(निकटवर्ती)	ए	हेतिरो	हेदो - हेदिड़ो	हहिड़ो
" "	हे	(इतना)	(इतना)	(ऐसा)
निश्चयवाचक	ओ	ओतिरो	ओदो - ओदिड़ो	उहड़ो
(दूरवर्ती)	हो	होतिरो	होदो - होदिड़ो	हुहड़ो
" "		(उतना)	(उतना)	(वैसा)
संबंधवाचक	जो (जे)	जेतिरो	जेदो - जेदिड़ो	जहिड़ो
		(जितना)	(जितना)	(जैसा)
नित्यसंबंधी	सो (ते)	तेतिरो	तेदो - तेदिड़ो	तहिड़ो
		(तितना)	(तितना)	(तैसा)
प्रश्नवाचक	को (के)	केतिरो	केदो - केदिड़ो	कहिड़ो
		(कितना)	(कितना)	(कैसा)

इस कोष्टक के 'एदो' इत्यादि बड़े आकार का और 'एदिड़ो' इत्यादि छोटे आकार का बोध कराते हैं।

किसी की तुलना करने के लिए जिस तरह संस्कृत में तर, तम, अथवा ईयस्, इष्ठ प्रत्यय लगाकर विशेषण बनाये जाते हैं, उस तरह सिन्धी में नहीं है। सिन्धी में भी हिन्दी की तरह संबंध सूचक तथा कुछ विशेष शब्दों क उपयोग से यह भाव व्यक्त किया जाता है, जैसे:-

रामु सुठो छोकरु आहे [राम अच्छा लड़का है]।

रामु गोपाल खाँ सुठो आहे [राम गोपाल से अच्छा है]।

रामु सभिनी छोकिरनि खाँ [या, मे] सुठो आहे

राम सभी लड़कों से [अथवा में] अच्छा है।

संस्कृत के 'तम' और 'इष्ठ' 'प्रत्ययों से युक्त कुछ शब्द सिन्धी में भी मिलते हैं पर वे केवल अन्य, गुणवाचक विशेषणों की तरह प्रयुक्त होते हैं; जैसे प्रियतमु, प्रीतमु [सब से प्यारा], मोंगष्टु [सभी से मूढ़] श्रेष्टु [श्रेष्ठ] जेठो [व्यक्ति का नाम-ज्येष्ठ] इत्यादि।

विशेषणों की कारक रचना

विशेषणों का अन्तिम स्वर भी संज्ञाओं की तरह अ, आ, इ, , उ, ऊ और ओ होता है, जैसे-

[१] अकारान्त विशेषण-जाम [बहुत], वधीक [अधिक] आदि।

[२] आकारान्त ,, -जुदा [जुदा] सफा साफ] आदि।

[३] इकारान्त ,, -खुशि [खुश], कांकि [चिन्तित, खन्न] आदि।

(४) ईकारान्त ,, —सवादी (स्वादपूर्ण), सिन्धी (सिन्धु-निवासी) आदि।

(५) उकारान्त ,, —बेज़ारु [खिन्न), खूबु [खूब] आदि।

[६] ऊकारान्त ,, —वेड़्हू [लड़ाकू], लोटू [लुटेरा] आदि।

[७] ओकारान्त,, —सुठो [सुष्ठु], भलो (भला] आदि।

इनकी कारक रचना संज्ञाओं की तरह ही होती है। ओकारान्त विशेषण, विशेष्य के लिंग, कारक तथा वचन के अनुसार विकृत होते हैं।

जैसे सुठो छोकिरो (अच्छा लड़का), सुठी छोकिरी (अच्छी लड़की)

सुठे छोकिरे खे (अच्छे लड़के को) सुठ्युनि छोकिर्युनि खे (अच्छी लड़कियों को) इत्यादि।

अन्य विशेषण बहुधा अविकृत रहते हैं।

क्रिया (Verb):—

जिस विकारी शब्द के प्रयोगसे हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं, जैसे:- रामु डोड़े थो (राम दौड़ता है) - इस वाक्य में 'डोड़े थो' क्रिया है। जब यह शब्द विधान नहीं करता तब उसका प्रयोग संज्ञा के समान होता है और उसे 'क्रियार्थक संज्ञा' कहते हैं; जैसे:- शुधु हवा में 'घुमणु' फाइदेमंदु आहे (शुद्ध हवा में घूमना लाभदायक है) - इस वाक्य में 'घुमणु' ऐसी संज्ञा है।

सिन्धी में सभी क्रियाओं का साधारण रूप 'णु' में समाप्त होता है; जैसे विहणु (बैठना), वञणु (जाना), खाइणु (खाना) आदि; और क्रियाओंका मूलरूप अर्थात् धातु, दे (दे, सं. दा), ने (ले जा, सं. नी) तथा रो (रो, सं. रुद्) को छोड़कर हमेशा 'इ' या 'उ' में पूरा होता है; जैसे वेहु [बैठ], वञु [जा], मारि (मार), खाराइ (खिला) आदि। आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष एकवचनका रूप हमेशा धातु के समान होता है।

क्रियाओं के मुख्य दो भेद हैं–(१) सकर्मक क्रियाएँ (Transitive Verbs) और (२) अकर्मक क्रियाएँ (Intransitive Verbs)। जिन क्रियाओं के व्यापार का फल कर्ता से निकल कर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है उन्हें सकर्मक क्रियाएँ कहते हैं; जैसे:- रामु मोहन खे 'पकिड़े थो' (राम मोहनको पकड़ता है)। परन्तु जिन क्रियाओं के व्यापार का फल केवल कर्ता पर पड़ता है उन्हें अकर्मक क्रियाएँ कहते हैं, जैसे:- रामु 'डोड़े थो' (राम दौड़ता है)

क्रियाओं का वाच्य तथा प्रयोग:–

वाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि क्रिया के द्वारा कर्ता के विषय में कुछ कहा गया है वा कर्म के विषय में, अथवा केवल भाव के विषय में।

वाच्य तीन प्रकारके हैं–कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य।

(१) कर्तृवाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि क्रिया का उद्देश्य उसका कर्ता है; जैसे रामु डोड़े थो (राम दौड़ता है), छोकिरी किताबु पढ़े थी (लड़की पुस्तक

पढ़ती है)।

(२) कर्मवाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं, जिससे जाना जाता है कि क्रिया का उद्देश्य उसका कर्म है; जैसे, गोपालु मारिजे थो या मार्यो वञे थो (गोपाल मारा जाता है)।

(३) क्रिया का वह रूप भाववाच्य कहाता है जिससे जाना जाता है कि क्रिया का उद्देश्य उसका कर्ता या कर्म नहीं है, किन्तु केवल उसका भाव है, जैसे:- डोड़िबो त पघरु ईन्दो (दौड़ा जायगा ता पसोना आएगा)।

सिन्धी भाषा की यह विशेषता है कि बहुधा क्रिया के साधारण रूपमें ' ज ' लगाने से कर्मवाच्य रूप बनते हैं, (यह ' ज 'संस्कृत के 'य' चिह्न का परिवर्तित रूप है) जैसे:-मारणु (मारना) मारिजणु, पिटणु (पीटना या बुरे वचन कहना) पिटिजणु, बधणु (बाँधना)- बधिजणु आदि ।

वाक्य में कर्ता वा कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया का जो अन्वय और अनन्वय होता है उसे प्रयोग कहते हैं । वाच्य के अनुसार प्रयोग भी तीन है—कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग। कर्तरि प्रयोग में क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार तथा कर्मणि प्रयोग में कर्म के अनुसार बदलता है। भावे प्रयोग में क्रिया के रूप में कर्ता तथा कर्म के कारण कुछ भी परिवर्तन नहीं होता।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ (Causal Verbs) :—

' मूल धातुके जिस विकृत रूपसे क्रिया के व्यापार में कर्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती है उसे प्रेरणार्थक धातु कहते हैं।' जैसे—पीउ पुट खाँ चिठी लिखाए थो। (बाप लड़के से चिट्ठी लिखाता है)। ये क्रियाएँ सकर्मक होती हैं। सिन्धी में भी बहुत ही क्रियाओं के दो प्रेरणार्थक रूप होते हैं। जैसे खणणु (उठाना)—खणाइणु, खणाराइणु, लिखणु (लिखना)—लिखाइणु, लिखाराइणु आदि। सिन्धी में ये क्रियाएँ, बहुधा धातुमें कुछ परिवर्तन करनेके पश्चात उसके अन्तमें ' आइणु ' 'आरणु', ' आराइणु ' लगाने से बनते हैं; जैसे, मारणु (मारना) माराइणु, जियणु (जीना)—जियारणु, धुअणु (धोना) धुआरणु, कमाइणु (कमाना) कमाराइणु आदि।

कृदन्त (Participles) :—

क्रिया के जिन रूपों का उपयोग दूसरे शब्द-भेदों के समान होता है उन्हें कृदन्त कहते हैं; जैसे हलणु=चलना (संज्ञा), हलन्दो = चलता (विशेषण), हली=चलकर (क्रियाविशेषण) आदि। सिन्धी- में निम्नलिखित कृदन्त हैं-

(१) वर्तमानकालिक कृदन्त (Present Participle) :—

सिन्धीमें ये कृदन्त बहुधा विशेषण की तरह काम में आते हैं और विशेष्य के विषय में बताते हैं कि वह एक कार्य करते हुए, साथ में दूसरा भी कार्य करता है, जैसे; गोपालु बाग़ माँ 'घुमन्दो' घरि आयो (गोपाल-बाग से घूमते हुए घर आया), घर दाँहँ ' वेन्दे ' मूँ रस्ते ते गुल दिठा--(घर जाते हुए मैंने रास्ते में फूल देखे)।

इकारान्त धातुओं के अन्तिम ‘ इ ’ को निकाल कर ‘ ईन्दो ’ लगाने से, तथा उकारान्त धातुओं के अन्तिम ‘ उ ’ को निकालकर ‘ अन्दो ’ लगानेसे बहुधा ये कृदन्त बनते हैं; जैसे मारि (म.र)-मारीन्दो, लिखु (लिख)–लिखन्दो आदि।

(२) भूतकालिक कृदन्त :–(Past Participle)

ये कृदन्त भूतकाल का समय दिखाते हैं और जब विशेषण का कार्य करते हैं तब विशेष्य के बारे में बताते हैं कि उस पर कुछ कार्य हो चुका है जैसे ‘ बच्यलु ’ अनु ग़रीबनि खे दिनो वियो (बचा हुआ अन्न गरीबों को दिया गया)।

धातुओं के आन्तिम इ और उ को निकाल कर ‘ यों ’ या ‘यलु’ लगाने से ये कृदन्त बनते है; जैसे लिखु (लिख) लिख्यो या लिख्यलु, मारि (मार) मार्यो या मार्यलु आदि। परन्तु इस नियम के अपवाद भी अधिक हैं। इन रूपों में से ‘ यो ’ वाला रूप बहुधा क्रियाओंके लिए उपयोग में आता है तथा ‘ यलु ’वाला रूप विशेषण के रूप में आता है।

(३) भविष्यत्कालिक कृदन्त (Future Particple):–

ये कृदन्त बहुधा विशेषण की तरह उपयोग में आते हैं और भविष्य काल का समय दिखाते हैं; जैसे:-सुभाणे मुँहिँ जो भाउ बम्बईअ माँ ‘ आचिणो ’ आहे (कल मेरा भाई बम्बई से आनेवाला है)।

ये रूप क्रिया के साधारण रूप के अन्तमें ‘ओ’ लगाने से बनते हैं; जैसे:- करणु (करना) करिणो, वञणु (जाना) वञिणो, आदि।

(४) पूर्वकालिक कृदन्त (Gerund or Conjunctive participle)

यह कृदन्त दो वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बनाता है और दिखाता है कि उस वाक्य का कर्ता एक कार्य पूरा कर बादमें दूसरा कार्य करता है, जैसे मूँ खतु 'लिखी' नौकर के दिनो (मैंने चिट्ठी लिखकर नौकर को दी)। ये कृदन्त अव्यय हैं।

उकारान्त धातुओं के अन्तिम ' उ ' को निकालकर ' ई 'लगाने से तथा इकारान्त धातुओं के अन्तिम ' इ ' को निकालकर ' ए ' जोड़नेसे ये कृदन्त बनते हैं; जैसे खाउ (खा)–खाई, मारि (मार) मारे, इत्यादि।

(५) कर्तृवाचक सञ्ज्ञा (Noun of Ajency).

यह कृदन्त क्रिया के करनेवाले का बोध कराता है; जैसे हलन्दड़ु (चलनेवाला), मारीन्दड़ु (मारनेवाला) आदि। यह कृदन्त विशेषण की तरह भी उपयोग में आता है; जैसे मोहीन्दड़ु रूपु (मोहनेवाला रूप)।

वर्तमानकालिक कृदन्तों के अन्तिम ' ओ ' को निकालकर 'अड़ु' लगाने से ये कृदन्त बनते हैं।

क्रिया का काल तथा अर्थ:–

' क्रिया के उस रूपान्तर को काल कहते हैं जिससे क्रिया के व्यापार का बोध होता है '। ' क्रिया के जिस रूप से विधान करने की रीति का बोध हाता है उसे अर्थ कहते हैं।'

अपने मन की इच्छा प्रकट करना, प्रश्न पूछना, प्रत्यक्षविधि काल अथवा संभाव्य भविष्यत् काल के अर्थ में, क्रिया के निम्नलिखित रूप होते हैं—

हलणु (चलना) (दोनों लिंगों में समान)

एकवचन	बहुवचन
माँ हलाँ (मैं चलूँ)	असीं हलूँ (हम चलें)
तूँ हलीं (तू चले)	तव्हीं हलो (तुम चलो)
हू हले (वह चले)	हू हलनि (वे चलें)

क्रिया के इस रूप के आधार पर, तथा वर्तमानकालिक कृदन्त और भूतकालिक कृदन्तों के आधार पर ही सिन्धी भाषा में सब काल तथा अर्थ बनते हैं।

(१) वर्तमानकाल (Present Tense)

इस काल से बोध होता है कि व्यापार का आरंभ बोलने के समय हुआ है। प्रत्यक्ष विधिकाल के रूपों के अन्त में एकवचन में थो (पुं.) थी (स्त्री.) तथा बहुवचन में था (पुं.) थ्यूँ (स्त्री) लगाकर यह काल बनाया जाता है; जैसे हू हले थो (वह चलता है) हू हलनि था (वे चलते हैं) इत्यादि।

(२) अपूर्ण वतर्मान काल (Present Continuous Tense)

इस काल से ज्ञात होता है कि वर्तमानकाल में व्यापार हो रहा है। प्रत्यक्ष विधिकाल में पिया (पुं.) तथा पेऊँ (स्त्री.) लगाने से यह काल बनता है, जैसे हू हले पियो (वह चल रहा है), हू हले पेई (वह चल रही है) आदि।

(३) सामान्य संकेतार्थ (Conditional) - यह क्रिया का वह रूप है जिससे कार्य - कारण का संबंध रखनेवाली दो क्रियाओं की असिद्धि सूचित होती है; जैसे, जेकदहिँ तव्हीँ अचो हा त माँ हलाँ हा (यदि आप आते तो मैं चलता)। क्रिया के ये रूप प्रत्यक्ष विधि काल के रूपों के अन्त में ' हा ' लगाने से बनते हैं। वर्तमानकालिक कृदन्तों से बननेवाले काल तथा अर्थः -

(१) भविष्यत्काल (Future Tense) इस काल से बोध होता है कि क्रिया के व्यापार का आरंभ होनेवाला है। जैसे हू हलन्दो (वह चलेगा) हूअ हलन्दी (वह चलेगी) आदि।

(२) अपूर्ण भविष्यत्काल (Future Continuous Tense) यह काल दिखाता है कि क्रिया का व्यापार चल रहा होगा; जैसे माँ हलन्दुसि पियो (मैं चल रहा होऊँगा)। यह काल वर्तमान - कालिक कृदन्तों के अन्त में 'पियो' लगाने से बनता है।

(३) वर्तमानकाल (सतत) (Habitual Present Tense):—यह काल दिखाता है कि क्रिया का व्यापार हमेशा होता है। [हिन्दी भाषा में इसके लिए क्रिया का भिन्न रूप नहीं मिलता]। उदा० हू हलन्दो आहे (वह हमेशा चलता है)। यह रूप वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ हुअणु (होना) क्रिया के वर्तमानकाल का रूप लगाने से बनता है।

(४) भूतकाल (सतत) (Habitual Present Tense):—यह काल दिखाता है कि क्रिया का व्यापार बीते समय में हमेशा होता

था। [इसी के लिए भी हिन्दी में सामान्य भूत काल से भिन्न रूप नहीं मिलता]। उदा० हू हलन्दो हो (वह हमेशा चलता था)। यह रूप वर्तमानकालिक कृदन्त में 'हुअणु' (होना) क्रिया का भूतकाल का रूप लगाने से बनता है।

(५) संदिग्ध वर्तमान काल (Dubious Present):—यह काल वर्तमान काल की क्रिया के व्यापार में शंका का बोध कराता है। जैसे माँ वेन्दो हून्दुसि (मैं चलता होऊँगा)। यह रूप वर्तमान कालिक कृदन्त में हुअणु (होना) का भविष्यत् काल का रूप लगाने से बनता है।

भूतकालिक कृदन्तों से बननेवाले काल तथा अर्थ:—

(१) भूतकाल (Past Tense) - इस काल की क्रिया से जाना जाता है कि व्यापार लिखने या बोलने के पहले हुआ। जैसे हू हल्यो (वह चला)। इस काल की क्रिया का रूप भूतकालिक कृदन्त के समान है।

(२) पूर्ण–वर्तमान काल (Present Perfect Tense):-इस काल की क्रिया से सूचित होता है कि व्यापार वर्तमान कालमें पूर्ण हुआ है। जैसे हू हल्यो आहे (वह चला है)। भूत–कालिक कृदन्त में 'हुअणु' का वर्तमान काल का रूप लगाने से यह काल बनता है।

(३) पूर्ण भूतकाल (Past Perfect Tense):- इस काल से मालूम होता है कि क्रिया के व्यापार को पूर्ण हुए बहुत समय बीत चुका; जैसे हू हल्यो हो (वह चला था)। भूतकालिक कृदन्तों के

अन्त में 'हुअणु' (होना) क्रिया का भूतकाल का रूप लगाने से यह काल बनता है।

(४) संदिग्ध भूतकाल (Dubious Past Tense):-यह भूतकाल की क्रिया के व्यापार में कुछ संदेह का बोध कराता है; जैसे हू हल्यो हून्दो (वह चला होगा)। यह काल भूतकालिक कृदन्त के पीछे 'हुअणु' क्रिया का भविष्यत् काल का रूप लगाने से बनता है।

(५) अपूर्ण भूतकाल (Past Continuous Tense) :- यह काल दिखाता है कि क्रिया का व्यापार गत काल में पूरा नहीं हुआ; किन्तु जारी रहा। जैसे हू हल्यो पिए (वह चल रहा था)। यह रूप भूतकालिक कृतन्तों के रूप में, 'पिए' का रूप लगाने स बनता है।

आज्ञार्थ (Imperative Mood):—धातु अर्थात क्रिया का मूल रूप और आज्ञार्थ का एकवचन हमेशा समान होते हैं और इनके अन्त में हमेशा 'इ' या 'उ' होता है, जैसे अचु (आ), मारि (मार) आदि। बहुवचन में अन्तिम 'उ' के स्थान पर ओ होता है और 'इ' का लोप कर 'यो' लगाकर बहुवचन बनाया जाता है; जैसे मारि—मार्यो, अचु—अचो आदि।

आज्ञार्थ का भविष्यकाल एकवचन में रूप 'इ' के बाद 'जि' लगाने से तथा उकारान्त एकवचन के रूप के 'उ' का लोप कर 'इजि' लगाने से बनता है। जैसे मारि—मारिजि, खणु (उठा)—खणिजि; उथु (उठ) उथिजि आदि। इस 'जि' के 'इ' का

लोप कर 'ओ' लगाने से आज्ञार्थ के भविष्यकाल का बहुवचन बनता है, जैसे मारिजो, खणिजो, उथिजो आदि।

सिन्धी भाषाके वैयाकरणों के अनुसार क्रिया के ये मुख्य पंद्रह काल तथा अर्थ हैं।

संयुक्त क्रियाएँ (Compound Verbs):-

कुछ विशेष कृदन्तों के आगे कुछ सहायक क्रियाएँ जोड़नेसे जो क्रियाएँ बनती हैं उन्हें 'संयुक्त क्रियाएँ' कहते हैं। जैसे:- पढ़ण लगो (पढ़ने लगा) रमन्दो रह्यो (रमता रहा) आदि। ऐसी क्रियाएँ जो संयुक्त क्रियाओं के बनाने में सहायता करती हैं, वे हैं पवणु (पड़ना), रहणु (रहना), वञणु (जाना), वठणु (लेना), विझणु (डालना) छद्णु (छोड़ना) सघणु (सकना) आदि।

क्रिया–विशेषण (Adverb):—

जिस शब्द से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया–विशेषण कहते हैं। प्रायः ये अव्यय होते हैं। यहाँ ठेठ सिन्धी के कुछ प्रसिद्ध क्रिया–विशेषण दिए जाते हैं।

कालवाचक–क्रियाविशेषण–

हाणे (अब), हींअर (अभी), पोइ (बादमें), अगे (आगे, पूर्वसमय में), अगिते (भविष्यमें), नेठि (अन्तमें) अजु (आज), सुभाणे (कल आनेवाला) काल्ह (काल बीता हुआ), परीँहँ (परसों), सवेर (सवेरे, जल्दी), दिहाड़ी (हररोज) अञा ताईँ

(अबतक), जदाहिँ (जब), तदाहिँ (तब), कदहीँ (कब), घणो करे (बहुधा, प्राय:), वरी (फिर), ओचितो ई (अचानक) साझुरु (सबेरे, जल्दी), उमालाके (शीघ्र)।

स्थानवाचक क्रियाविशेषण:—

हेठि (नीचे), मथे (ऊपर), ओरे (समीप), परे (दूर), हिते (यहाँ), हुते (वहाँ), किथे (कहाँ), जिते (जहाँ), तिते (तहाँ); हेदे हेदाँहँ (इधर), होदे, होदाँहँ (उधर), वेझा (समीप) चौधारी (चारों ओर)। इन में से आधिक क्रिया-विशेषण अन्तमें 'आँ' चिह्न लेकर अपादान का बोध कराते हैं, जैसे हेठाँ (नीचेसे) मथाँ, ओरियाँ, परियाँ, हिताँ, हुताँ, किथाँ, जिताँ, तिताँ आदि।

रीतिवाचक तथा परिमाणवाचक क्रियाविशेषण:—

दाढो (बहुत), पटोअ न (बिल्कुल नहीं), छो (क्यों), छाकाण (किस लिए), जिअँ त (जैसे कि), ताँहिँ करे [इसी लिए]; उटिलन्दो [उसके विपरीत]; बेशक [बिना शंका के], रुगो [सिर्फ] इएँ [ऐसे], हीँ अँ [इस तरह], जिअँ [जैसे], तिअँ [तैसे], कीअँ [कैसे], अटिकल [लगभग], तिखो [तेज़], तकिरो [जल्दी], आहिस्तो [आहिस्ता], जाणी वाणो [जान बूझकर], हरूभरू [व्यर्थ ही], खाली-पीली [व्यर्थ ही], मस या मस-मस [बहुत कठिनाईसे]; जाई [सत्यत:, वास्तव में], होरियाँ [धीरेसे], दाढियाँ [अधिकता से], पुठिआँ [पीछे से], निचु (स-स्वागतम्), नितु [हमेशा] जेकुसि [सम्भवत:], झटिपटि [जल्दी] ठहफह [जल्द ही] आदि।

यह ध्यान रहे कि इनमें से ओकारान्त शब्द अव्यय नहीं हैं।

संबंधसूचक (postpositions):—

जो अव्यय संज्ञा (अथवा संज्ञा के समान उपयोगमें आनेवाले शब्द) के बहुधा पीछे आकर उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलाता है उसे संबंध-सूचक कहते हैं। केवल पद्यमें ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं जहाँ संबंध-सूचक कभी कभी शब्द के पहले भी आता है; जैसे 'पसो लज लतीफु चवे, केदी 'खे' कखनि; जेकी 'मंझि' जहान सो तारीअ तगे तुँहि ँजे, आदि। सिन्धी भाषा के कुछ संबंध-सूचक शब्द इस प्रकार हैं:-

सन्दो, जो (का), जा, जे (के) जी, जूँ (की), खे (को) में (में), माँ (मेंसे) खाँ (से), ताँ (पर से), दे, दाँहँ (ओर, को) वटि (पास), लाइ (लिए), वास्ते (लिए), वाँगुरि (की तरह), जहिड़ा (जैसा) ताईं ँ (तक), मूजिबि (अनुसार), बाबति (बारेमें) आहिरि (अनुसार), मंझि (मध्य), द्वाराँ (द्वारा), बिना, सवाइ (सिवाय), खातिर, सबबि (सबब)।

समुच्चय-बोधक (Conjunctions)

जो अव्यय (क्रिया की विशेषता न बतलाकर) एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाता है उसे समुच्चय-बोधक कहते हैं। ऐसे कुछ शब्द हैं-अइँ (और), या (अथवा), बि, पिणु (भी), पर, जेकर जकदहीं ँ (यदि) त (तब, तो), बल्कि, जणु त (मानो, जनु) न त (नहीं तो) आदि।

विस्मयादि-बोधक (Interjection):—

जिन अव्ययों का संबंध वाक्य से नहीं रहता और जो वक्ता के केवल हर्ष-शोकादि भाव ज़ाहिर करते हैं, उन्हें विस्मयादि-बोधक अव्यय कहते हैं; जैसे, आहा, वाह वाह, शाबास, आह, छिः, हूँ (हाँ,ठीक), थू (तिरस्कार-द्योतक),आफिरीन (शाबास), फिठि (धिक्कार-द्योतक), अलाजे (भगवान जाने), शाल (भगवान की दया से) हाय, घोड़ा-ड़े, बाबाड़े, अलाड़े (मुसीबत के समय कहते हैं) आदि।

समास (Compound Words):—

जब दो या अधिक शब्द अपने संबंधसूचक शब्द को छोड़कर एक साथ मिल जाते हैं तब उनके मेल को समास और ऐसे मिले हुए शब्दों को सामासिक शब्द कहते हैं।

(१) द्वन्द्व समासः—जिस समास में सब पद अथवा उनका समाहार प्रधान रहता है उसे द्वन्द्व समास कहते हैं इस में पद आपस में 'और' समुच्चय-बोधक से जुड़े होते हैं, पर इस का सामासिक शब्द में लोप रहता है, जैसेः-

दालि-रोटी, मछो-मानी, खीरु-खण्डु (दूध-शक्कर), भुल चुक (भूल-चूक), कपिड़ो-लटो (कपड़ा-लत्ता), चङो-भलो (भला-चंगा) आदि। कभी-कभी 'अथवा' के द्वारा भी ये शब्द आपस में मिले होते हैं जैसे, ब-चारि, पंज-छह आदि। ऐसे भी सामासिक शब्द होते हैं जिन में एक शब्द सार्थक होता है तो दूसरा अर्थहीन, अप्रचलित, विपरीत अर्थवाला अथवा समानुप्रास होता है; जैसे तीवणु-

-तल्हो (माँसका भोजन), घोड़ो-बोड़ो, दटो-मुटो (हृष्ट-पुष्ट), ताज़ो-तवानो (ताज़ा), पेसो-पंजरु (पैसा), माण्हू-छेणू (आदमी) वणु-टिणु (वृक्ष), घटि वधि (कम-ज्यादा), दियणु-वठणु (देना-लेना) आदि।

(२) तत्पुरुष समासः-यह वह समास है जिस में दूसरा शब्द प्रधान होता है और वह पहले शब्द से कर्ता तथा संबोधन को छोड़कर शेष किसी कारक-विभक्ति से मिला होता है। सामासिक-शब्द में विभक्ति का लोप होता है; जैसे,

हैदराबाद, (हैदर के द्वारा आबाद), घर-धणी (घर का मालिक), मथे-खाऊ या मथे-खपाऊ (सिर को खानेवाला या खपानेवाला), कपड़ु-छाणु [कपड़े से छाना हुआ], हथकड़ी [हाथ के लिए कड़ी], देश-नेकाली [देशसे निकाला], हद-भगलु (हड्डियों से टूटा हुआ अर्थात् मेहनती), हर-फन-मौला (प्रत्येक कला में होशियार), रनपुट (राण्ड का पुत्र) आदि।

इस समास का दूसरा प्रकार वह है जिस में शब्द के पहले अ या अण आता है और अभाव या निषेध दिखाता है; जैसे अधर्मु (न धर्म), अन्याउ (न न्याय), अणलभु (मिलना मुश्किल), अणबणाति (अनबन)। ऐसे समासों को 'नञ् तत्पुरुष' कहते हैं।

(३) कर्मधारय समास:-इस समास में दोनों ही पद समानाधिकरण होते हैं। यह समास या तो विशेष्य-विशेषण या उपमान-उपमेय का भाव सूचित करता है; जैसे:-

परमानन्दु (परम आनन्द), महाराजु (महान् राजा), परलोकु (पर लोक), खुशबू, खटिमिठो (खटमिट्ठा, यहाँ दोनों पद विशेषण हैं), अधमुओ (अध मरा), घनिश्यामु (घन सरीखा श्याम) आदि।

(४) द्विगु समासः-यह समास कर्मधारय का ही एक प्रकार है। इस में पहला शब्द संख्यावाचक होता है और पूरे समास से समुदाय का बोध होता है, जैसे-चौवाटो (चार रास्तों का समुदाय), टिवाटो (तीन रास्तों का समुदाय), चौघड़ो (चार घड़ियों का समूह), दुपटो (दो पट्टों का समूह), ब्यानी (दो आनों का समुदाय), बिपहिरी (दो पहरों का समय) आदि।

(५) मध्यमपदलोपी समासः-इस समास में दो शब्द आपस में किसी तीसरे शब्द के द्वारा मिले होते हैं, परन्तु समास में वह शब्द अध्याहृत रहता है। वह शब्द बहुधा विग्रह करते समय बीच में आता है; जैसे,

गरुधाणो (गुड़ से मिश्रित धान), दहीवड़ो (दही में डूबा हुआ बड़ा), तिलशाकिरी (तिल से युक्त शक्कर की मिठाई) आदि।

(६) बहुव्रीहि समासः-इस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता और यह पूरा सामासिक शब्द किसी दूसरे शब्द का विशेषण होकर उपयोग में आता है; जैसे

खीर-पियाकु (जो दूध पीता है वह), बारहँ-सिङो (बारह हैं सींग जिसके वह), बदनसीबु (बद है नसीब जिसका वह), टिकुण्डो (तीन हैं कोण जिसमें वह), चौमुखो (चार हैं मुख जिस के वह),

कारमुँहों (काला है मुँहँ जिसका वह), वदवातो (बड़ा है वदन जिसका वह, अर्थात् अधिक बोलनेवाला), सोनवर्नी (स्वर्ण के समान है वर्ण जिसका वह); साफुदिलि (साफ है दिल जिसका वह) आदि।

(७) अव्ययीभाव समास:–

इस समास में पहला शब्द प्रधान होता है। यह पूरा सामासिक शब्द क्रियाविशेषण की तरह उपयोग में आता है; जैसे–

हररोजु (प्रतिदिन), हरघड़ीअ (हरघड़ी), यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार), बेखाटिके (निश्चिन्त होकर), बेशक (बिना शंका के) नाहकु (बिना हक के)। शब्दों की द्विरुक्ति से भी यह समास बनता है, जैसे, पलि–पलि (पल-पल), भेरे-भेरे (हरबार), दीँहों दीँहुँ (दिन-ब-दिन), रातों राति (रातो-रात), घरि घरि (हर घरमें) आदि।

(८) प्रादि समास:–

इन समासों के आरंभ में कोई न कोई उपसर्ग रहता है। जैसे, नाचङो (बीमार), मछदु (न छोड़नेवाला), निधणिको (अनाथ) बेचयो (कहना न माननेवाला), रेमुल्हो (बिना मूल्य), सुपत्यो (ईमानदार), कुपत्यो [बेईमान], सबाझो [दयालु], अवगुण, निभागो [अभागा], निर्दई [निर्दय]; निरासु [निराश], परपोटो [प्रपौत्र] आदि।

प्रत्यय (Suffixes)

१ विशेषणों से भाववाचक संज्ञाएँ बनाने के लिए आई, आणि, इ, ई, प, पो, पिणि, त, आत, यत, वत, कारु, कार, काई, क, अ आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं; जैसे–

घणो [आधिक]–घणाई, अच्छो [सफेद]–अछाणि, वेकिरो [चौड़ा] वेकरि, खराबु [खराब]–खराबी, सियाणो [सयाना]–सियाणप, राज़ी–राज़िपो, नन्ढो [छोटा] नन्ढापिणि, सखी [उदार] सखावत, ग़ाफ़िलु [ग़ाफ़िल]- गाफिलत, मुश्किल-मुश्किलात, कबूल–कबूलियत, अन्धो [अन्धा]-अन्धूकारु, थधो, [ठण्डा]-थधिकार, वान्दो [फुरसत पाया हुआ]- वान्दिकाई, साओ [हरा]–सावक, सुहिणो [सुन्दर]–सूँहँ।

२ संज्ञाओं से विशेषण बनाने के लिए ई, ओ, ऊ, यो॑, आणो, इणो, ऊणो आइतो, को, ओको, रो, अरो, दार, मन्द, नाक, आदि, प्रत्यय लगाए जाते हैं; जैसे,

ज़हिरु [ज़हर]–ज़हिरी, प्यारु [प्यार]–प्यारो, जबलु [पर्वत] जाबिलू, अगु [आगे] -अग्यो॑, उञ [प्यास]-उञायो, बारु (बालक–बाराणो), माठि (शान्ति)–माठीणो, पँज (पाँच) पँजूणो, कमु (काम)-कमाइतो, राति (रात)-रातोको, सुबूह (सुबह) सुबूहको, जीउ (जीव) - जीअरो, सघ (ताकत) सघारो, हवा-हवादार, दौलत-दौलतमन्द, दर्द-दर्दनाक।

(३) संज्ञाओं से कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनाने के लिए, आई, आरु, गार, दार आदि प्रत्यय लगते हैं।

गोठु (गाँव)-गोठाई, गऊँ (गौ)-गँवारु, गुनाहु-गुनाहगार, जागीर-जागीरदार।

(४) धातुओं से संज्ञाएँ बनाने के लिए उनका आन्तिम स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ स्वरों में बदला जाता है जैसे, खिलु (हँस)—खिल, पूजि (पूज)—पूजा, सुकु (सूख)—सोकि, लहु (उतर)—लाही, वधाइ (बढ़ा)—वधाउ, नचु (नाच)—नाचू, वढि (काट)—वाढो।

धातुओं के अन्त में ति, त, ता, ती, प, पो, क, को, कू, न्दो, न्दी, आरो, तथा क्रियाओं के साधारण रूप में ई, आणी लगाने से भी संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे

हलु (चल)-हलति, निउरु (झुक) निउरत, मञु (मान)-मञुता, भरि (भर)-भरिती, सुञाणु (पहचान) सुञाणप, लगु (लग)-लागापो, वहु (बह)-वहुक, छुटु (छूट)-छोटिको, रहु (रह)-रहाकू, उभिरु (बढ़, उदय हो)-उभिरन्दो, हलु (चल)-हलन्दी, वधु (बढ़)-वाधारो, थिअणु (होना)-थिअणी, खणणु (उठाना)-खणाणी।

(५) लघुता अथवा न्यूनता दिखाने के लिए संज्ञा अथवा विशेषण के अन्त में ड़ी, ड़ो, एड़ो, णी, ई प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे,

सिन्धु (सिन्धु-देश)-सिन्धुड़ी, सन्दूक-सन्दूकिड़ी, पुटु (पुत्र) पुटिड़ो, नन्ढो (छोटा) नान्ढिड़ो, कारो (काला)-कारेड़ो, हटु (दूकान) हटिड़ी, घिण्डु (घण्टा) घिण्डिणी, खटोलो (खाट)-खटोली आदि।

यही 'ड़ो' प्रत्यय कविता में भूतकालिक कृदन्तों के पीछे जब लगाया जाता है तब माधुर्य तथा कोमलता की सृष्टि करता है; जैसे

मुँहिँ जो सङ्ग सरित्यूँ भली केचि थियड़ो,
[मेरा नाता सखियो भलें केचमें हुआ ।]
प्यारे पुन्हल साँ मुँहिँ जो पेचु पियड़ो ।
[प्यारे पुन्हूँ से मेरा संबंध पड़ा (हुआ) ।] (शाह)

सिन्धुकी सिराइकी उपभाषा में यह 'ड़ो' बहुत उपयोग में लाया जाता है । शिकारपुर के लोग तो क्रिया विशेषणों में भी यह प्रत्यय लगाते हैं; जैसे हितिड़े (यहाँ) तितिड़े (वहाँ) आदि ।

संज्ञाओं तथा विशेषणों में 'लु' प्रत्यय लगाने से भी भाषा में माधुर्य तथा कोमलता आती है जैसे, पुन्हूँ (व्यक्ति का नाम)-पुन्हलु, मिठो (मीठा) मिठलु, सुहिणो (सुन्दर)-सुहिणलु, भूरो (सुन्दर रंगवाला) भूरलु इत्यादि ।

—x—

शुद्धि--पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१६	khown	known
११	१७	सुमनो विनिर्गत, पिशाच चातुर्विद्यस्य	I श्री पिशाच चातुर्व्विद्य II सुमनो मुखविनिर्गत विधयपुर श्री चातुर्विद्यस्य
२२	२०	I. P. E. C.	A. P. I.C.
३३	१०	Freice	Fierce
४५	५	माऊ	भाऊ
४८	८	वे कौन	वे आभीर कौन
५३	१	का लाड़क	का लाकड़
७२	५	खगा:	खड्गा:
७५	६	धृतं	घृतं
७५	१४	वुढो	वुठो
७७	१३	मीठो	मिठो
७८	२०	गोघा	गोधा
८०	२	अरितवारु	आरितवारु
८०	९	दीहूँ	दी हुँ
१४६	२	श्लो. २५	श्लो. ३
१६८	१४	लठइ	लठ[इ]
२०८	१	को (हिकु) 'कोई' के अर्थमें)	को- हिकु ('कोई' के अर्थ में)
२०९	२१.	तथा	होते हैं तथा

शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं

१—सिन्धी—साहित्य का संक्षिप्त परिचय।

अपभ्रंश - काल से लेकर आज तक
सिन्धी - साहित्यका हिन्दी में इतिहास।

२—सिन्धी - व्युत्पत्ति - कोष।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से
किसप्रकार शब्द बदल कर सिन्धी में आये हैं
यह बताया गया है।

३—सिन्धी लोक - गीत और लोक - गाथाएँ (हिन्दी में)।

४—शाह जो रसालो।

सिन्धु के प्रसिद्ध संत कवि
शाह भिटाई के काव्य का सचित्र
हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण।

—x—